अथर्ववेद में मानवाधिकार : एक विश्लेषण

(Atharvaveda meṅ Mānavādhikāra : Eka Viśleṣaṇa)

एम. फिल्. उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ. सुधीर कुमार

शोधार्थी
अनिल कुमार

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

सत्र- 2016

विशिष्ट-संस्कृताध्ययन-केन्द्रम्
SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
नई दिल्ली- 110067
NEW DELHI – 110067

Julay 26, 2016

DECLARATION

I declare that the Desertation entitled "अथर्ववेद में मानवाधिकार : एक विश्लेषण" (Atharvaveda men Mānavādhikāra : Eka Viśleṣaṇa) submitted by me for the award of degree **Master of Philosophy(M.Phil)** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.

Anil kumar 29/07/2016
(Researcher)

विशिष्ट-संस्कृताध्ययन-केन्द्रम्
SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
नई दिल्ली- 110067
NEW DELHI – 110067

Julay 26, 2016

CERTIFICATE

The Thesis entitled ''**अथर्ववेद में मानवाधिकार : एक विश्लेषण**'' (Atharvaveda men Mānavādhikāra : Eka Viśleṣaṇa) submitted by **Anil kumar** to Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi – 110067 for the award of degree **Master of Philosophy (M.Phil)** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

26.7.16

Dr. Sudhir Kumar

(Supervisor)

Dr. Sudhir Kumar
Associate Professor
Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Girishnath Jha

Prof. Grishnath Jha

(Chairperson)

PROF. GIRISH NATH JHA
Chairperson
Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

कृतज्ञता-ज्ञापन

सफलता मानव जीवन का उद्देश्य होता है, इसकी प्राप्ति में अनेक लोगों की त्याग और तपस्या का योगदान होता है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम तो इस शोध-प्रबन्ध की निर्विघ्न समाप्ति हेतु उस करुणा-कन्द परमात्मा को स्मरण करना चाहूँगा, जिसने प्रस्तुत शोध हेतु उपयुक्त परिस्थिति का निर्माण किया। तत्पश्चात् मैं अपनी माता श्रीमति शकुन्तला देवी तथा पिता श्री तुलसी राम जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जो विभिन्न अभावों के पश्चात् भी मेरे उज्ज्वल भविष्य के लिए बचपन में ही पुत्र-प्रेम का परित्याग कर गुरुकुल जैसी संस्था में पढ़ने का सुअवसर प्रदान कर त्याग की प्रतिमूर्ति बने।

तत्पश्चात् अपने गुरुवर् डॉ. सुधीर कुमार के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनके वात्सल्यपूर्ण व्यवहारकुशलता से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। आप एक कुशल मार्गदर्शक की भाँति मेरे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आप शोधकार्य के साथ-साथ जीवन के विभिन्न पक्षों पर सहयोग के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

तत्पश्चात् मैं अपने विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र के गुरु डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल, डॉ. रामनाथ झा, प्रो. शशिप्रभा कुमार, डॉ. हरिराम मिश्र, प्रो. उपेन्द्र राव, डॉ. टी. महेन्द्र व डॉ. सत्यमूर्ति तथा अन्य गुरुजन डॉ. कौशल कुमार पाण्डेय, रिपेन चन्द्र शास्त्री जी के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मेरे उज्ज्वल भविष्य के शुभाकांक्षी सभी गुरुजनों ने जीवन में विभिन्न परिस्कार कर उन्नत दिशा की ओर प्रेरित किया। सबके प्रयासों के परिणामस्वरूप ही उक्त शोध सम्भव हो सका है। इसलिए सभी गुरुजनों के श्रीचरणों में नतमस्तक हूँ।

तत्पश्चात् चाचा श्री शालिकराम जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने पूरे कुल को एक नई दिशा दी। शिक्षा के लिए सभी का सहयोग किया तथा अध्ययन काल में उद्भूत विभिन्न समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान कर उज्ज्वल मार्ग प्रशस्त किया। बड़े भाई प्रवीण कुमार जी के प्रति कृतज्ञ हूँ व अनुज सुनील कुमार के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। दोनों ने ही पारिवारिक समस्याओं को मेरे जीवन में बाधा नहीं बनने दिया। दादी जी, चाचा श्री आज्ञाराम जी, कर्मानन्द जी, सतीश चद्र जी के प्रति भी साभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी संबल प्रदान किया तथा उच्च शिक्षा हेतु प्रेरित किया। भाई शिवकान्त(सोनू) व अमित तथा बहन अनीता और श्रेया (ऋतु) के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

मैं गुरुकुल करतारपुर के प्रति भी नतमस्तक हूँ, जिसने मेरे बाल्यकाल की शिक्षा तथा जीवन के निर्माण में अविस्मरणीय योगदान दिया। आचार और विचार को एक नई दिशा दी।

उक्त शोधकार्य कि सम्पूर्णता में विशेष सहयोग हेतु भूपेन्द्र वालखड़े व अंकुश तानपुरे जी का अपूर्व सहयोग रहा। आप दोनों ने शोधकार्य की उत्कृष्टता हेतु विभिन्न सुझावों के साथ-साथ लेखनीगत त्रुटियों के परिष्कार हेतु अथक प्रयास किया। मैं उक्त कार्य कि निर्विघ्न समाप्ति हेतु आप दोनों के अविस्मरणीय योगदान के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

इनके अतिरिक्त शोध-कार्य में विशेष सहयोग के लिए विश्वबन्धु जी, रेनू के. शर्मा तथा देवेन्द्र जी के प्रति भी आभार। आप लोगों ने भी उक्त कार्य में सकारात्मक भूमिका प्रस्तुत की।

अपने मित्रों रवि प्रकाश चौबे, दीपक साहू, सतीश कुमार, ओम प्रकाश, अबू हुजैफा खान, जयन्त रॉय, अनिल आर्य, धर्मवीर, शशिकान्त, राकेश जी, नन्दिनी, लवकेश, नितिन, सविता, शशि, शिलादित्य हालदार, विजय, आशुतोष, बलराम रॉय, सहदेव का भी विशेष सहयोग के लिये धन्यवाद।

केन्द्र के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों का भी आभार व धन्यवाद। इनमें विशेष सहयोग के लिये मनीष जी, शबनम जी व मंजू जी, मयूरी जी, विकास जी, अरुण जी का धन्यवाद। केन्द्रीय व संस्कृत केन्द्र पुस्तकालय के समस्त सदस्यों को भी उनके प्रत्येक सहयोग के लिये धन्यवाद।

अन्ततः अन्य स्मृत-विस्मृत उन सभी सहयोगियों का धन्यवाद जिनके नाम सम्भवतः मेरी स्मृति से ओझल हो रहे हैं। अतः उन सभी का भी हार्दिक धन्यवाद।

शोधार्थी
अनिल कुमार

विषयानुक्रमणिका

कृतज्ञताज्ञापन……..……..…….....i-ii

विषयानुक्रमणिका……..……...…….……i-v

विषय-प्रवेश……..……..……...…1-5

प्रथम अध्याय : वैदिक साहित्य : अथर्ववेद…...……...…...…...…6-33

1.1 वेदों का स्वरूपगत विश्लेषण

1.1.1 वेदत्रयी : पर्यालोचन

1.1.2 मन्त्र विधा के आधार पर

1.1.3 संहिता के आधार पर

1.1.4 विषयप्रतिपादन के आधार पर

1.2 वेदों का द्रष्टृत्व एवं कर्तृत्व

1.2.1 मन्त्रों का कर्तृत्व

1.2.1.1 अपौरुषेयता का सिद्धान्त

1.2.1.2 पौरुषेयता का सिद्धान्त

1.2.1 संहिताओं का कर्तृत्व।

1.3 अथर्ववेद : परिचयात्मक अध्ययन

1.3.1 अथर्ववेद का रचनाकाल

1.3.2 अथर्ववेद पर उपलब्ध भाष्य

1.3.3 अथर्ववेद से सम्बन्धित अन्य साहित्य

1.3.4 अथर्ववेद का वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय मानवाधिकार : उद्भव एवं विकास.....34-65

2.1 मानवाधिकार का अर्थ एवं प्रकृति (Concept and Nature of Human Rights)

2.1.1 मानव

2.1.2 अधिकार

2.2 मानवाधिकार की परिभाषा (Definations of Human Rights)

2.2.1 विधिक आधार (Constitutional Bases)

2.2.2 सामाजिक आधार (Social Bases)

2.2.3 नैतिक आधार (Athical Bases)

2.3 मानवाधिकार विषयक प्राचीन भारतीय मत (Ancient Indian Theory of Human Rights)

2.4 मानवाधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Human Rights)

2.4.1 नैतिक अधिकार (Athical Rights)

2.4.2 कानूनी अधिकार (Constitutional Rights)

2.4.3 सामाजिक अधिकार (Social Rights)

2.4.4 राजनीतिक अधिकार (Polotical Rights)

2.5 सार्वभौमिक घोषणापत्र में मानवाधिकार (Universal Declaration of Human Rights)

2.6 भारतीय संविधान में मानवाधिकार (Human Rights in The Constitution of India)

2.6.1 समानता का अधिकार (Right to Equality)

2.6.2 स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)

2.6.3 शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

2.6.4 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

2.6.5 संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights)
2.6.6 संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

2.7 मानवाधिकार का उद्भव और विकास (Origin and Development of Human Rights)

2.7.1 अधिकारों का प्राकृतिक सिद्धान्त (Natural Theory of Rights)
2.7.2 अधिकारों का वैधानिक सिद्धान्त (Legal Theory of Rights)
2.7.3 अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical Theory of Rights)
2.7.4 अधिकारों का नैतिक सिद्धान्त (Moral Theory of Rights)
2.7.5 अधिकारों का समाज-कल्याण सम्बन्धी सिद्धान्त (Social Welfare Theory of Rights)
2.7.6 अधिकारों का मार्क्सवादी सिद्धान्त (Marxist Theory of Rights)

तृतीय अध्याय : अथर्ववेद में मानवाधिकार.....66-107

3.1 वेदों में मानवाधिकार (Human Rights in The Vedas)
3.2 ऋग्वेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Rugved)
3.3 यजुर्वेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Yajurved)
3,4 सामवेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Samved)
3.5 अथर्ववेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Atharvaved)
3.6 अथर्ववेदीय मानवाधिकारों का विश्लेषण (Critical Study of Human Rights in Atharvaved)

3.6.1 जीवन का अधिकार (Right to Live)

3.6.1.1 हिंसक तथा विषैले प्राणियों के विनाश का अधिकार

3.6.2 सामाजिक अधिकार (Social Rights)

ब्राह्मण (Brahman)
क्षत्रिय (Kshatriya)
वैश्य (Vaishya)

शूद्र (Sudra)

3.6.2.1 समानता का अधिकार (Right of Equility)

3.6.2.2 शिक्षा का अधिकार (Right of Education)

3.6.2.2.1 स्त्री शिक्षा (Woman Education)

3.6.2.3 विवाह का अधिकार (Right to Marry)

3.6.2.4 संगठन बनाने का अधिकार (Right to Make Unian)

3.6.2.5 स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)

3.6.2.5.1 आजीविका की स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Work)

3.6.2.5.2 अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Speech)

3.6.2.6 शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

3.7 धार्मिक अधिकार (Dharmik Rights)

3.8 राजनैतिक अधिकार (Political Rights)

3.8.1 राजा के अधिकार (Rights of King)

3.8.2 प्रजा के अधिकार (Rights of People)

3.8.2.1 राजा चुनने का अधिकार (Right to Elect of King)

3.8.2.2 चुनाव में भाग लेने का अधिकार (Right to Be King)

3.8.2.3 सुरक्षा पाने का अधिकार। (Right to get Siquerity)

3.8.2.4 काम पाने का अधिकार (Right to get work)

3.9 आर्थिक अधिकार (Economical Rights)

3.10 सांस्कृतिक अधिकार (Cultural Rights)

3.11 स्त्रियों के अधिकार (Woman Rights)

चतुर्थ अध्याय : मानवाधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्र, भारतीय संविधान तथा अथर्ववेदीय मानवाधिकारों में समानता एवं वर्त्तमान प्रासङ्गिकता……108-124

4.1 समानता का अधिकार (Right of Equility)

4.2 समानता का अधिकार (Right of Equility)

4.3 शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

4.4 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

4.5 शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Rights about Education)

4.5 विवाह सम्बन्धी अधिकार (Rights about Marry)

4.7 अथर्ववेदीय मानवाधिकारों की वर्तमान प्रासङ्गिकता (Contemporary Relevance of Atharvavediy Human Rihgts)

निष्कर्ष……..125-128

अथर्ववेदस्थ मानवाधिकारों की सम्भावित ससन्दर्भ-सूची……i-xvii

परिशिष्ट-1 : समानता का अधिकार

परिशिष्ट-2 : शिक्षा का अधिकार

स्त्री-शिक्षा

परिशिष्ट-3 : राजनैतिक अधिकार

परिशिष्ट-4 : जीवन का अधिकार

परिशिष्ट-5 : आर्थिक अधिकार

परिशिष्ट-6 : धार्मिक अधिकार

परिशिष्ट-7 : अभिव्यक्ति का अधिकार

परिशिष्ट- 8 : विवाह का अधिकार

परिशिष्ट-9 : कार्य का अधिकार

परिशिष्ट-10 : अभय प्राप्ति का अधिकार

परिशिष्ट-11 : स्त्री अधिकार

सन्दर्भग्रन्थसूची……..……i-vi

विषय-प्रवेश

समाज मानव जीवन का एक अभिन्न अङ्ग है। इसके अभाव में मानव जीवन अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। प्रायः संसार का प्रत्येक जीव समाज में ही रहना पसन्द करता है क्योंकि हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी को एक-दूसरे की आवश्यकता पड़ती है। पारस्परिक सहयोग से जीवन अत्यन्त सरल बन जाता है। मनुष्यों ने अपने जीवन-सौकर्य हेतु अनेकानेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिनमें समाज के विकास का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समाज ने मानव जीवन को इतना प्रभावित किया है कि अब तो ऐसा प्रतीत होने लगा है कि समाज में जीना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। समाज में जीने के लिए कुछ आवश्यक निर्देश होते हैं जिनका पालन सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक समझा जाता है। मानव संस्कृति के उदय के साथ ही समाज के सिद्धान्त का विकास हुआ। समाज प्रायः विभिन्न मूल्यों एवं आदर्शों पर आधारित होता है। वही मूल्य और आदर्श ही उस समाज की दिशा और दशा तय करते हैं। प्रत्येक समाज के अपने कुछ रीति-रिवाज नियम और अनुशासन होते हैं, समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए जिनका पालन अपरिहार्य होता है। ये नियम और अनुशासन पूर्णतः समाज में रहने वाले व्यक्तियों के हित को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किए जाते हैं। एक समाज में प्रत्येक व्यक्ति के एक-दूसरे के प्रति कुछ अधिकार और कर्त्तव्य होते हैं। जिस समाज में इनका अनुपालन ठीक प्रकार से होता है वह समाज उतना ही उन्नत होता है। जिस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होता है, सभी के अधिकारों की रक्षा करते हुए अपने कर्त्तव्यों का समुचित पालन करता है, वह समाज उतना ही उन्नत होता है। ये अधिकार और कर्त्तव्य समय-समय पर मुख्य और गौण होते रहते हैं। प्राचीन समाज कर्त्तव्य-

प्रधान समाज था। अधिकारों की अपेक्षा व्यक्ति कर्त्तव्यों को अधिक महत्त्व देता था परन्तु आधुनिक समाज बिल्कुल इसके विपरीत है। आज प्रत्येक व्यक्ति कर्त्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों को अधिक महत्त्व देता है। जिस समाज में अधिकार और कर्त्तव्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं, वही समाज आदर्श समाज माना जाता है। अधिकार और कर्त्तव्यों की अनिश्चितता ही सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। समाज में जिस गति से मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है ऐसे समय में तन्निवारण हेतु अधिकार और कर्त्तव्यों का विश्लेषण अत्यन्त प्रासंगिक है।

आज मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति सजग हुआ है। यह समाज के लिए अच्छा संकेत है परन्तु कर्त्तव्य सतत विस्मृत होते जा रहे हैं, जिससे समाज के उत्कर्ष की गति बाधित हो रही है और जनता में असन्तोष बढ़ रहा है। प्राचीन वैदिककालीन समाज कर्त्तव्योन्मुख था। समाज का उपकार करना वह अपना प्राथमिक दायित्व समझता था। सामाजिक कल्याण में सबके अधिकारों की सुरक्षा सन्निहित होती थी। चूँकि अधिकार और कर्त्तव्य एक-दूसरे के संपूरक हैं अतः वेदों में कर्त्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों की व्यापक चर्चा की गई है। विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि वैदिक काल मानवीय इतिहास का स्वर्णिमकाल था। सभी लोग परस्पर आदर-पूर्वक सम्मान का जीवन जीने में ही अपना कल्याण समझते थे। सभी लोग अपने-अपने दायित्वों के प्रति पूर्णरूप से सजग होते थे। राजा प्रजा के हित के लिए पूर्णतः समर्पित होता था। वह सम्पूर्ण प्रजा को अपना पुत्र मानकर उसका पालन करता था। प्रजा भी राजा का यथायोग्य सम्मान करती थी। समाज में परस्पर सौहार्द्र का वातावरण था। सभी के अधिकार और कर्त्तव्यों का समानरूप से बँटवारा किया गया था। ऐसे में आधुनिक समाज में मानवाधिकार की वैदिक अवधारणा का प्रकाशन अत्यन्त उपादेय है। भारतीय परम्परा में सामाजिक जीवन के विषय में अत्यन्त सूक्ष्मता से विवेचन हुआ है, जिसमें कहा गया है कि अधिकार और कर्त्तव्य दोनों सामाजिक जीवन के मूल आधार हैं।

इस प्रकार वैदिककाल से ही अधिकार और कर्त्तव्य की अवधारणा सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अङ्ग रहा है। इनके अभाव में समाज की परिकल्पना असम्भव-सी प्रतीत होती है। जिस समाज में अधिकार और कर्त्तव्य की स्थिति जितनी न्यायसंगत होगी वह समाज उतना ही स्वस्थ और विकसित होगा। वर्तमान में मानवाधिकार को लेकर सारा विश्व अपने अपने ढंग से काम कर रहा है तथापि समयान्तर के दृष्टिकोण से मानवाधिकारों का सम्मान एक गम्भीर चिन्तन का विषय है। परस्पर सद्भाव

के द्वारा ही मानवाधिकारों की सुरक्षा सम्भव है। वेदों में अधिकारों से अधिक कर्त्तव्यों पर बल दिया गया है क्योंकि उसका मानना है कि कर्त्तव्यमूलक अधिकार ही समाज को सही दिशा दे सकते हैं। लिखित सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेद एक-दूसरे के कर्त्तव्य में ही पारस्परिक अधिकार सन्निहित होने का समर्थक हैं। राजा समाज की इस प्रकार से व्यवस्था करे कि जिसमें नैतिकता की प्रचुर मात्रा विद्यमान हो। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के सुख सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही किसी कार्य में प्रवृत्त हों। उस कार्य को पाप समझा जाना चाहिए, जिससे किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचता हो। यह पाप और पुण्य की अवधारणा जनमानास के अन्तस्थल में इतनी गहराई से व्याप्त होनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्य को करने से पहले पाप और पुण्य के आधार पर कार्य का मूल्याङ्कन करके ही अपने कार्यों में प्रवृत्त हो। पाप और पुण्य की अवधारणा सभी को गलत कार्य करने से रोकती है तथा सभी मनुष्यों को आत्म-नियन्त्रित करती है। आज तर्कशील समाज में पाप और पुण्य की अवधारणा का ह्रास हुआ है। इस प्रकार की प्रेरणा का सर्वथा अभाव है, जो उनको गलत कार्यों से रोक सके। आज आवश्यकता है समाज में नैतिकता के और अधिक समावेश की। एतदर्थ नैतिक मूल्य प्रधान वेद-कालीन समाज के अवलोकन तथा तत्कालीन सामाजिक सिद्धान्तों के पुनर्मुद्रण की।

अथर्ववेद मानवीय सभ्यता के प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक है, जो वेद के अन्तर्गत परिगणित है। प्राचीन मानवीय सभ्यता की जानकारी हेतु उपलब्ध प्राचीन स्रोतों में से अथर्ववेद एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। यद्यपि अभी तक अथर्ववेद का कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सका है तथापि इसकी प्राचीनता पर किसी को सन्देह नहीं है। यह वेद लौकिक जीवन के बहुत समीप है अतः इसमें मानव जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पक्षों पर गहन चिन्तन हुआ है। मानवाधिकार जो प्राचीन समय से ही सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अङ्ग रहा है, उक्त वेद में तत्सम्बन्धी वैदिक अवधारणा का सम्यक् प्रकाशन हुआ है। इसमें अधिकारों की कर्त्तव्यमूलकता का प्रतिपादन है। अथर्ववेद में प्रायः उन सभी मानवीय अधिकारों का विवेचन किया गया है, जो एक मनुष्य को समाज में सम्मानपूर्वक जीवन-यापन के लिए आवश्यक हैं। जैसे- जीवन का अधिकार, समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार तथा अभिव्यक्ति का अधिकार आदि। अथर्ववेद में विभिन्न प्रकार के मानवाधिकारों का निदर्शन हुआ है, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समयावधि को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी

ने उन्हीं मानवाधिकारों के दिखाने का प्रयास किया है जो मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र (Universal dicliaration of human rights) और भारतीय संविधान में अनुस्यूत हैं। उक्त शोध-कार्य हेतु अथर्ववेदीय शौनकीय संहिता पर हरिशरण सिद्धान्तालंकार कृत हिन्दी भाष्य को प्रमुख रूप से शोध का आधार बनाया गया है। आवश्यकतानुसार अथर्ववेद पर उपलब्ध अन्य भाष्यों का भी अवलोकन किया गया है।

वैदिक संस्कृति में सन्निहित आदर्श समाज की परिकल्पना में मानवाधिकार को उद्घाटित करने के लिए शोधार्थी ने उक्त विषय को अपने शोध का आधार बनाया है। आज समाज में जातिवाद, असमानता, भेदभाव, शोषण आदि अनेकों समस्याएँ परिव्याप्त हैं। समाज में उक्त समस्याओं का उद्गम स्थल वेदों को माना जाता है। उक्त मिथक सम्बन्धी भ्रान्त अवधारणा को समाप्त करने की दृष्टि से भी शोधार्थी प्रस्तुत शोध-कार्य में प्रवृत्त हुआ है। यद्यपि वेदों का कोई निश्चित काल निर्धारित नहीं किया जा सका है, जिसमें वेदविदों की समान मति हो तथापि कुछ विद्वान् अथर्ववेद अन्य तीनों वेदों की अपेक्षा अर्वाचीन मानते हैं, इसलिए उक्त मिथक के समुचित समाधान हेतु अथर्ववेद को अङ्गीकार किया गया है।

उक्त ग्रन्थ में वर्णित मानवाधिकार की अवधारणा विश्व के समक्ष एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सहायक होगी। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जहाँ एक तरफ वैदिक आचार सम्बन्धी भ्रान्त अवधारणा को समाप्त करने में सहायक होगा, वहीं दूसरी ओर मानवाधिकार सम्बन्धी वैदिक अवधारणा की व्यापक दृष्टि भी प्रस्तुत करने में सहायक होगा। यद्यपि मानवाधिकार की अवधारणा को पश्चिमी देशों की देन माना जाता है, तथापि वेदों में मानवाधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों की व्यापक चर्चा है। अतः मानवाधिकारों की वेदमूलकता की सिद्धि भी शोधकर्ता का उद्देश्य है।

अथर्ववेदीय अधिकारों में जनमानस के लिए समानता और स्वतन्त्रता के अधिकार का प्रावधान होने के पश्चात् भी समाज में शूद्र आदि वर्णों को अछूत समझा जाने लगा। उन पर विभिन्न प्रकार की निर्योग्यताएँ प्रत्यारोपित कर दी गयीं। उनको शिक्षा से वञ्चित कर दिया गया, ताकि वास्तविकता से वह दूर रहे और वेदों का आदेश बताकर मनमाने तरीके से उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्धारण किया जा सके। आधुनिक समाज में अम्बेडकर, दयानन्द और गाँधी जैसे समाज

सुधारकों के प्रयासों के फलस्वरूप सभी मनुष्यों को वेदादि ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार मिला। परिणाम यह हुआ कि वैदिक शिक्षाओं का प्रकाश जनमानस तक पहुँचा और यह पता चला कि वेदों में भेदभाव जैसे किसी बात का समर्थन नहीं किया गया है प्रत्युत् सबसे मित्रवत् व्यवहार की बात कही गई है। समाज में जिसके परिणामस्वरूप समस्याएँ उद्भूत हुयीं, उनका वेदों से किसी विशेष प्रकार हा सम्बन्ध नहीं रहा है। वेदों में प्रतिपादित प्रत्येक अधिकार और कर्त्तव्य समाज के समुचित कल्याण के लिए हैं। वेदों की कर्त्तव्यपरायणता का विवेचन लोकविज्ञ है। इसलिए आवश्यकता है अधिकारों की दृष्टि से वेदों के विश्लेषण की, जिससे कि अधकार जो सामाजिक जीवन का एक आधार स्तम्भ है के विषय में वेद विषयक मत स्पष्ट हो सके।

सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए वेद नैतिकता पर अधिक बल देता है। वेदों में शाश्वत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना है। वह परम्परा जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना सन्निहित है। वेदों का मानना है कि जिस समाज का प्रत्येक व्यक्ति नैतिक रूप से जितना उन्नत होगा उस समाज में समस्याएँ उतनी ही कम होंगी। आज आवश्यकता है समाज में वैदिक शिक्षाओं का ठीक ढंग से प्रचार और प्रसार की। आधुनिक समय में विश्व के समक्ष वेदोक्त शिक्षाओं के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत करना समाज की आवश्यकता है, जिससे वेदोक्त शिक्षाओं तथा मानवीय सभ्यता के प्रति न्याय हो सके। अथर्ववेद में वर्णित मानवाधिकार को समझने से पूर्व अथर्ववेद तथा मानवाधिकार सम्बन्धी विभिन्न पक्षों के सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान परमावश्यक है। एतदर्थ उक्त शोधकार्य में प्रथमतया अथर्ववेद सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं को उद्घाटित किया गया है, तत्पश्चात् मानवाधिकार सम्बन्धी आधुनिक मत को स्पष्ट करते हुए मानवाधिकार की भारतीय अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् अथर्ववेद के विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर समानता, स्वतन्त्रता, शिक्षा, धर्म तथा आजीविका सम्बन्धी विभिन्न मानवाधिकारों का विश्लेषण किया गया है। अन्त में मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा का अथर्ववेदीय मानवाधिकारों के साथ समानता का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है।

1

प्रथम अध्याय

वैदिक साहित्य : अथर्ववेद

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है जिसमें मानवीय गरिमा के सार्वभौमिक अन्तस्तत्त्व सन्निहित हैं। प्राचीन काल से ही लोग दूर देश से आकर भारत में धर्माचरण का पाठ पढ़ते हैं। मानवता का धर्म से साक्षात् सम्बन्ध होता है, जिसका सामाजिक जीवन से अविनाभाव सम्बन्ध है। प्राचीन काल से ही शासन तन्त्र में धर्म का विशेष हस्तक्षेप होता रहा है। धर्म के आधार पर ही सम्पूर्ण शासन तन्त्र सुव्यवस्थित किया जाता रहा है। जिससे अभ्युदय (लौकिक उत्थान) और निःश्रेयस (पारलौकिक उत्थान) की सिद्धि हो वही धर्म है। धर्म का शाब्दिक अर्थ होता है कर्त्तव्य।[1] इन्हीं कर्त्तव्यों में ही अधिकार के भाव भी सन्निहित होते हैं। समाज में सभी व्यक्तियों के एक-दूसरे के प्रति कुछ न कुछ कर्त्तव्य होते हैं। इन कर्त्तव्यों का निर्धारण वेदादि सत्य शास्त्रों के आधार पर किया जाता है। परमगति की प्राप्ति के लिए वेदादि शास्त्रों में जिन मार्गों का विवेचन किया गया है, उनमें मानवता एक अपरिहार्य अङ्ग है। यम[2] और नियमों[3] का पालन धर्माचरण का आधार है। जिसमें अहिंसा को सर्वोपरि बताया गया है। वैदिक साहित्य में संसार के सभी जीवों में अपने-आप का तथा अपने-आप में सभी जीवों के दर्शन करने की शिक्षा दी गई है। इसकी शिक्षाओं में समत्व की भावना का विशेष स्थान है, जिसको योग कहा गया है।[4] योग विद्यार्थी जीवन का एक अभिन्न अङ्ग है। यह किसी भी व्यक्ति में समत्व की

[1] धारणाद्धर्म। *महाभारत,* कर्णपर्व, 49/50.

[2] अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। *योगदर्शनम्*, 2/30.

[3] शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। वही, 2/32.

[4] समत्वं योग उच्यते। *गीता,* 2/28.

भावना के विकास में सहायक होता है। **'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'**[5] तथा **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**[6] का पाठ पढ़ाने वाले वेद वैश्विक जगत् की प्राचीनतम निधि एवं भारतीय ज्ञान परम्परा के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। भारतीय परम्परा इनको सभी ज्ञानराशियों का आदि स्त्रोत मानती है।[7] मैक्समूलर ने इनको मानव-मस्तिष्क का सर्वोत्तम विकास कहा है।[8] इनमें सुदीर्घ काल में अर्जित अतीत के उपलब्धियों की एक सुदृढ़ परम्परा सन्निहित है। तत्त्ववेत्ता मनीषियों ने अपने अप्रतिम साधना की पृष्ठभूमि पर जिन शाश्वत तथ्यों का प्रणयन किया, उन्हीं तथ्यों के संकलन का नाम वेद है।[9] वेदों का महत्त्व सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक है क्योंकि उनमें जिन शाश्वत तथ्यों का वर्णन किया गया है वे किसी काल या देश की सीमा में नहीं बाँधे जा सकते। इनमें मानवीय सुलभ भावनाओं का अप्रतिम समन्वय करते हुए आदर्शोन्मुख व्यक्तित्त्व के प्रति अग्रसर करने वाली विभिन्न प्रेरणाओं का सन्निवेश है। प्रकृति के अनुसार जीवन जीने में ही प्राणिमात्र का कल्याण है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटिक करके तदनुकूल जीवन जीने की प्रेरणा का समन्वय है। समाज में रहना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, स्वस्थ समाज में रहकर ही मनुष्य अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है, इसलिए स्वस्थ समाज की परिकल्पना वेदों का एक प्रबल पक्ष रहा है। सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए मनुष्य परम गति को प्राप्त करे, यही वेदों का ध्येय है। यद्यपि आधुनिक मनुष्य के लिए वैदिक ऋषियों की भाषा अत्यन्त दुरूह है, तथापि तत्सम्बन्धी अन्यान्य प्राप्त सामग्री के आधार पर वेदोक्त सिद्धान्तों को समझा जा सकता है। वेदों के यथार्थ को समझने के लिए परवर्ती ऋषियों ने जो अथक प्रयास किया है, उसके परिणामस्वरूप वैदिक वाङ्मय का कलेवर अति विशाल हो गया है। मानव जीवन से जुडे सभी पक्षों पर जिस गहनता से इनमें विचार किया गया है, वह कोई तत्त्ववेत्ता ही कर सकता है। वेद को स्पष्ट करते हुए महर्षि यास्क कहते हैं कि मन्त्रों का साक्षात्कार करके ऋषियों ने अन्यों के हित के लिए मन्त्रों का उपदेश किया। ये

---

[5] *यजुर्वेद,* 32/8.

[6] *हितोपदेश,* 1/71.

[7] सर्वज्ञानमयो हि सः। *मनुस्मृति,* 2/7.

[8] मैक्समूलर, *History of ancient Sanskrit literature,* Page-65.

[9] यज्ञेन॑ वा॒चः प॑दवीय॑माय॒न्तामन्व॑विन्द॒न्नृषि॑षु॒ प्रवि॑ष्टाम्। ऋग्वेद, 10/71/3.

उपदेश ही कालान्तर में वेद और वेदाङ्ग नाम से प्रसिद्ध हुए।[10] **विद ज्ञाने**[11], **विद सत्तायाम्**[12], **विदलृ लाभे**[13], **विद विचारणे**[14] और '**विद चेतनाख्याननिवासेषु**'[15] इन धातुओं से '**हलश्च**'[16] इस पाणिनीय सूत्र द्वारा '**करण**' और '**अधिकरण**' अर्थ में '**घञ्**' प्रत्यय करने पर वेद शब्द सिद्ध होता है।[17] यद्यपि अधिकतर विद्वान् वेदशब्द को विद् ज्ञाने धातु से ही निष्पन्न मानते हैं तथापि वेद में उक्त सभी धात्वर्थों का समवाय है। आधुनिक वेदविद् पं. मधुसूदन ओझा भी इसी बात का समर्थन करते हुए वेद को दो भागों में बाँटते हैं-

1. शब्दात्मक वेद।
2. तत्त्वात्मक वेद।

शब्दात्मक वेद संहितारूप है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने इनको चार भागों में विभाजित किया है क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये ग्रन्थरूप में उपलब्ध होते हैं।

तत्त्वात्मकवेद सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत्, चित् और आनन्दस्वरूप। ये तीनों ही तत्त्व वेद शब्द के व्युत्पत्तिजन्य अर्थ में समाहित हैं। 'विद् सत्तायाम्' से सत्, 'विद् ज्ञाने' से चित् तथा 'विदलृ लाभे' से आनन्द,[18] मिलकर वेद का सच्चिदानन्दस्वरूपत्व की सिद्धि करते हैं। परम्परा सच्चिदानन्दस्वरूप केवल अखण्ड ब्रह्म को मानती है। उसके अनुसार चूँकि वेद ब्रह्मनिःश्रित ज्ञान है, अतः यह भी सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। अतः केवल 'विद् ज्ञाने' से ही वेद शब्द की व्युत्पत्ति मानकर वेद के यथार्थस्वरूप को नहीं समझा जा सकता। इसी दिशा में आचार्य सायण वेद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार का अलौकिक उपाय बताने वाला ग्रन्थ वेद है।[19]

---

[10] साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। विमला, *सायण तथा दयानन्द के वेदभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन,* सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1974, पृ० 2.

[11] *धातुपाठ*, 2/57, पृ० 27.

[12] वही, 4/60, पृ०32.

[13] वही, 6/141, पृ० 40.

[14] वही, 7/13, पृ० 41.

[15] वही, चुरादिगण, 177.

[16] *अष्टाध्यायी*, 3/3/121.

[17] दयानन्द, *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*, वेदोत्पत्ति, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा, 1967, पृ० 282.

[18] *महर्षिकुलवैभवम्,* जयपुर 1956, पृ० 25-96. उद्धृत, *संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास*, प्रथम खण्ड, पृ० 53.

[19] इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति सः वेद। सायण, *ऋग्वेदभाष्यभूमिका*, पृ० 5.

उक्त परिभाषा से दो बातें स्पष्ट हो रही हैं एक तो वेद इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार का अलौकिक उपाय बताता है तथा दूसरा ग्रन्थविशेष का नाम वेद है। यदि हम सायण तथा मधुसूदन ओझा के वेदविषयक मतों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो सायण ने जिस ग्रन्थविशेष को वेद कहा है, ओझा की दृष्टि में वह केवल शब्दात्मक वेद है। ऋक्प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति में वेद शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि जिसके द्वारा संसार के यथार्थ सत्ता का ज्ञान हो तथा मनुष्य जीवन के परम ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के यथार्थस्वरूप का प्रतिपादन करते हुए मोक्षप्राप्ति का सरलतम मार्ग प्रशस्त किया जाए, वह वेद है।[20] वेद की यह परिभाषा किञ्चित् व्यापक प्रतीत होती है। वेद प्रायः ज्ञानस्वभावक है, वेद ज्ञानस्वरूप है अतः वेद की उक्त परिभाषा स्वरूप लक्षण है। अमरकोष के सुप्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी कहते हैं कि जिसके द्वारा धर्म का ज्ञान हो उसे वेद कहते हैं।[21] महर्षि पिप्पलाद के वेद विषयक मत को उद्धृत करते हुए आनन्दतीर्थ ने विष्णुतत्त्वनिर्णय में कहा है कि प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाणों से जिसकी सत्ता का अवबोध नहीं किया जा सकता, ऐसी सत्ता के बोधक को वेद कहते हैं।[22] सुप्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट भी इसी तथ्य को ही परिपुष्ट करते हैं।[23]

उपर्युक्त तीनों मतों के अनुसार यह प्रतीत होता है कि वेद शब्द ज्ञानराशि का द्योतक है। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि का भी यही मानना है कि अन्य प्रमाणों के द्वारा न जाने जा सकने वाले तत्त्व जिसके द्वारा जाने जाएँ उसे वेद कहते हैं।[24] सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र तथा आपस्तम्भ धर्मसूत्रकार कहते हैं कि शब्दार्थ (शब्दप्रमाण) के द्वारा आरम्भ किए जाने वाले कर्मों का तथा उनकी समाप्ति का उपदेश जिसके द्वारा हो, उसके लिए वेद शब्द का प्रयोग होता है।[25] वेद शब्द ज्ञान का पर्याय है, जिसका अर्थ दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में कहा गया है कि जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनको पढ़ के विद्वान् होते हैं, जिनसे सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक-ठीक सत्यासत्य का विचार

---

[20] विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः। *ऋक्प्रातिशाख्य, वर्गद्वयवृत्ति*, पृ० 5.

[21] विदन्ति येन धर्मं वेदः। *अमरकोष* टीका, 1/5/3.

[22] नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति। तस्मादाहुर्वेदा इति पिप्पलादश्रुतिः॥ उद्धृत, व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 2.

[23] प्रत्यक्षेणानुमीत्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥ उद्धृत, सायण, *तैत्तिरीय भाष्य भूमिका*

[24] विदन्त्यनन्यप्रमाणवेद्यं धर्मलक्षणमर्थमस्मादिति वेदः। *मनुस्मृति,* 2/6. मेधातिथि कृत टीका।

[25] शब्दार्थारम्भणानां तु कर्मणां समाम्नायसमाप्तौ वेदशब्दः। *सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र,* 27/1/114. तथा *आपस्तम्भ धर्मसूत्र,* 2/4/8/12.

मनुष्यों को होता है, इससे ऋक्संहितादि का नाम वेद है।[26] अभिनवभारती में गुप्तपाद वेद का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि वेद शब्द सत्ता, लाभ और विचार को अभिव्यक्त करता है।[27] वाक्यपदीयकार लिखते हैं कि-

वेत्ति कार्यमकार्यं च विन्दतेऽनुत्तमं धनम्।
विस्तृतिर्विद्यते कीर्त्या विन्तेऽद्वैतमहो यतः॥
स्मृतयो बहुरूपाश्च दृष्टादृष्टप्रयोजनाः।
तमेवाश्रित्य लिङ्गेभ्यो वेदविद्भिः प्रकल्पिताः॥[28]

वेद को स्पष्ट करते हुए तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि वेद के द्वारा ही देवताओं ने असुरों की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त किया। जिसकी शिक्षाओं से आसुरी प्रवृत्तियों का नाश करके मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है, वह वेद है।[29]

अतः सभी विद्वानों ने वेद को भिन्न-भिन्न तरीके से परिभाषित किया है, यद्यपि आचार्य सायण ग्रन्थराशि को वेद मानते हैं, तथापि वे जिस ग्रन्थ की बात कर रहे हैं, वह ज्ञान का समवायमात्र ही तो है। इस प्रकार उक्त विवेचनों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस बात में किसी की विमति नहीं है कि वेद ज्ञानराशि है। यदि सूक्ष्मता से विचार करें तो यह मत सर्वथा उचित नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि यदि केवल ज्ञानराशि वेद है तो संसार में अन्य जितनी भी ज्ञानराशियाँ हैं उन सबका अध्याहार वेद के अन्तर्गत क्यों नहीं कर लिया जाता? केवल मन्त्र(संहिता), ब्राह्मण आदि को ही वेद क्यों माना जाता है? वास्तव में इस संसार में जितना भी ज्ञान है, वह वेद संज्ञक ही है। अतः उक्त मत में अतिव्याप्ति दोष स्पष्ट है। अतिव्याप्ति निवारण हेतु यदि 'इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट निवारण हेतु अलौकिक उपाय बोधक' इस अंश को लिया जाए तो भी समाधान नहीं हो सकता क्योंकि न्याय, सांख्य, योग आदि दर्शनग्रन्थ भी तो अलौकिक साधन ही बताते हैं। यदि यह कहा जाए कि कुछ संकलित ज्ञानराशि का नाम वेद है तो अतिव्याप्ति का परिष्कार हो जाएगा। इस प्रकार वेद शब्द प्राचीन समय में ज्ञानराशि के रूप में प्रयुक्त

---

[26] विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्याः यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। दयानन्द, *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*, वेदोत्पत्ति, *पृ०* 283.

[27] नाट्यस्य वेदनं सत्ता लाभः विचारश्च यत्र तन्नाट्यवेदशब्देनोच्यते। *नाट्यशास्त्र,* अभिनवभारती टीका, 1/1.

[28] *वाक्यपदीय*, ब्रह्मकाण्डकाण्डम्, 7-10.

[29] वेदेन वै देवा असुराणां वित्तं वेद्यमवन्दन्त तद् वेदस्य वेदत्वम्। *तैत्तिरीय संहिता*, 1/7/4/6.

होता था क्योंकि उस समय ज्ञान के श्रोत केवल वेद ही थे, परन्तु आज के समय में ज्ञान राशि के अनेकों स्रोत उपलब्ध होते हैं। प्राचीन समय में वेद शब्द ज्ञानराशि के लिए प्रयोग होता था जो कालान्तर में अर्थसंकोच-वशाद् मात्र संहिता और ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त होने लगा। दयानन्द आदि आधुनिक विद्वान् केवल संहिता भाग ऋग्, यजुः, साम और अथर्व को ही वेद मानते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में वेद शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता था परन्तु आज संज्ञा के रूप में रूढ़ हो गया है। इसलिए आधुनिक समय में वेद शब्द का रूढ़ अर्थ अधिक तर्क-संगत प्रतीत होता है। प्राचीन साहित्यों में वेदों को श्रुति, आम्नाय, छन्द, त्रयी, आगम, निगम आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है।[30] ये सभी प्रायः संहिता के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं। श्रुति के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ को स्पष्ट करते हुए दयानन्द कहते हैं कि- '**श्रवणात् श्रुतिः**', "**आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्तेऽनया सा श्रुतिः।**"[31] अर्थात् श्रवण परम्परया अध्ययन-अध्यापन के कारण इसका नाम श्रुति है।

वेदों का स्वरूपगत विश्लेषण

वेद के स्वरूप के विषय में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। इसके विषय में वेदविदों में प्रायः दो प्रकार के मत प्रचलित हैं।

1. मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है।
2. केवल संहिता भाग वेद हैं।

प्रथम मत जिसमें मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना गया है यह मत प्रायः प्राच्य भारतीय विचारकों का है। इस मत को स्पष्ट करते हुए सर्वप्रथम बौधायन ने जो सूत्रकाल के सबसे प्राचीन आचार्य माने जाते हैं, जिनका कि समय डा. गोरख प्रसाद ने 1331 ई०पू० तथा कुछ अन्य विद्वानों ने 900 ई०पू०

---

[30] श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी धर्मस्तु तद्विधिः। स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी॥ *अमरकोष*, 1/6., श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः। *मनुस्मृति*, 2/10. श्रुतिः त्रयी वेद आम्नायत्रयी। *अमरकोष*, 1/6/3, आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्। *जैमिनीयमीमांसासूत्रम्*, 1/2/1. समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। *निरुक्तम्*, 1/1. छन्द शब्द भी मन्त्र के लिए ही होता था। छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य समाम्नातः। *निरुक्त*, 1/1. त्रीन् वेदान् विदन्तीति त्रिविदः। त्रिविदा सम्बन्धिनोऽध्येतारस्त्रैविदाः, ते च मन्त्रभागम् ऋगादिरूपेण त्रिविधमाहुः जैमिनीयन्यायमालाविस्तर, 2/1/27. रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः। *पातञ्जमहाभाष्य*, पस्पशान्हिक, आगमः खल्वपि ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। *जैमिनीयन्यायमालाविस्तर*, 2/1/27. निगम शब्द केवल मन्त्रों के लिए ही प्रयुक्त होता था। व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन,* पृ० 37.

[31] *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,* पृ० 29.

से 850 ई०पू० माना है।[32] '**मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते**'[33] तथा '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**'[34] कहकर मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का वेदत्व स्वीकार किया। यही उक्ति सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र तथा कात्यायन विरचित प्रतिज्ञापरिशिष्ट सूत्र में भी उद्धृत है।[35] आचार्य जैमिनि ने भी इसी मत को युक्तियुक्त ठहराया है।[36] कुमारिल भी इसी मत में अपनी सहमति प्रकट करते हैं।[37] आचार्य मध्व ने भी जैमिनि के मत को ही स्वीकार किया है।[38] कौशिक सूत्र में भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को आम्नाय कहा है।[39] आचार्य सायण भी परम्परा का ही निर्वहन करते हुए उक्त मत में ही अपनी सहमति जताते हुए मन्त्रब्राह्मणात्मक समन्वित राशि को वेद मानते हैं।[40] आचार्य शंकर भी इसी मत के समर्थक हैं, वेदान्तसूत्र भाष्य में उन्होंने ब्राह्मणों की भी वेदवत्ता स्वीकार की है।[41] वाक्यपदीयकार आचार्य भर्तृहरि ब्राह्मण, स्मृति आदि को वेदमूलक ही मानते हैं।[42] मनुस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि भी संहिता और ब्राह्मण दोनों को ही वेद मानते हैं।[43] पाश्चात्य विद्वानों में मैक्समूलर ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। व्रजबिहारी चौबे, मैक्समूलर के मत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि मैक्समूलर का मत है कि वेद का अभिप्राय केवल संहिता से नहीं, अपितु आर्यों के उस प्राचीन सामूहिक साहित्य से है जिसमें संहिताएँ, ब्राह्मण आदि सभी आ जाते हैं। उसने लिखा है कि वास्तव में यह मानना यथार्थ के अधिक नजदीक होगा कि वेद, वैदिक युग के सम्पूर्ण पवित्र साहित्य का सामूहिक नाम है।[44] कहा है कि इस प्रकार उक्त मत के समर्थन की एक लम्बी परम्परा है।

---

[32] कपिलदेव द्विवेदी, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* पृ० 240.

[33] *बौधायन गृह्यसूत्र,* 2/6/2.

[34] तत्रैव, 3/2/63.

[35] *सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र*, 1/1/7. *प्रतिज्ञापरिशिष्ट सूत्र*- 1.

[36] *जैमिनीय मीमांसासूत्र*, 2/1.

[37] मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडङ्गमेक इति। *तन्त्र वार्तिक*, 1/3/10.

[38] *जैमिनीन्यायमालाविस्तर*, 2/1/25.

[39] आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च। *कौशिक सूत्र*, 1/3.

[40] मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः। सायण, *ऋग्वेदभाष्यभूमिका,* पृ० 14.

[41] ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्येनोपमातुं युक्तम्। *वेदान्तसूत्रशांकरभाष्य,* 1/3/33.

[42] स्मृतयो बहुरूपाश्च दृष्टादृष्टप्रयोजनाः । तमेवाश्रित्य लिङ्गेभ्यो वेदविद्भिः प्रकल्पिताः॥ *वाक्यपदीयम्*, ब्रह्मकाण्डम्, 7.

[43] वेदशब्देन ऋग्यजुःसामानि ब्राह्मणसहितान्युच्यन्ते। *मनुस्मृति,* 2/6., मेधातिथि कृत टीका।

[44] It would be indeed much nearer the truth to take 'Veda' as a collective name for the sacrrd literature fo the vedic age, which forms. Maxmular, History of ancient Sanskrit literature, page 10. उद्धृत, व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 7.

द्वितीय मत, जिसमें केवल संहिता भाग अर्थात् ऋग्, यजुष्, साम और अथर्व को ही वेद माना गया है। दयानन्द सहित विल्सन, ग्रिफिथ आदि पाश्चात्य विद्वान् इस मत के प्रबल समर्थक हैं। दयानन्द कहते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते[45], क्योंकि वे पुराणेतिहास सञ्ज्ञक हैं, वे सभी वेद की व्याख्या करते हैं इसलिए ऋषि प्रोक्त हैं न कि ईश्वर प्रोक्त। कात्यायनभिन्न ऋषियों ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना है। उनके अनुसार ये संहिताओं से इतर हैं तथा मनुष्य-बुद्धि द्वारा रचे गए हैं।[46] दयानन्द के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों का प्रामाण्य वेदाधीन है क्योंकि '**ब्राह्मण ग्रन्था वेदानुकूलतया प्रमाणमर्हन्ति**' अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य हैं।[47] अपने ग्रन्थ भ्रमोच्छेदन में उन्होंने कहा है– "इसलिए मन्त्रभाग मूल होने से ब्राह्मणग्रन्थों से अनुकूल वा प्रतिकूल हो, तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतःप्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकूल हो तो प्रमाण होकर माननीय होने के कारण परतः प्रमाण हैं।"[48] व्रजबिहारी चौबे दयानन्द के मत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि दयानन्द का मानना है कि केवल संहिता भाग को ही वेद माना जा सकता है ब्राह्मण को नहीं, क्योंकि केवल संहिता भाग ही ऋषि-दृष्ट हैं, ब्राह्मण ऋषि-दृष्ट नहीं हैं, वे तो केवल संहिताओं के भाष्यमात्र हैं। व्याख्यापरक ग्रन्थों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व है। भाष्य या व्याख्या को वेद की संज्ञा नहीं दी जा सकती। बौधायन, आपस्तम्भ आदि श्रौतसूत्रों में जो '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' मिलता है दयानन्द के अनुसार वे सभी प्रक्षिप्त वाक्य हैं।[49] व्याख्या और व्याख्येय दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है। इसलिए भी इनको एक नहीं माना जा सकता। विल्सन का मानना है कि ब्राह्मण ग्रन्थ संहिता के न तो सहायक हैं और न ही अन्तरंग, इसलिए उनको वेद की संज्ञा नहीं दी जा सकती।[50] ग्रिफिथ भी विल्सन के मत का समर्थन करते हुए केवल संहिताओं को ही वेद मानते हैं।

---

[45] *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*, वेदसंज्ञाविचार, *पृ०* 91-92.

[46] वही, पृ० 91-92.

[47] वही, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय, पृ० 311.

[48] *दयानन्दीय लघुग्रन्थसङ्ग्रह*, भ्रमोच्छेदन, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा, 1988, पृ० 262.

[49] उद्धृत, व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन,* पृ० 6.

[50] We may venture to affirm, in opposition to the consentient assertions of brahmanical scholars and critics that neither of thes works has the slightest claim to be regarded as the counterpart and contemporary of the Samhita, or as an integral part of the Veda. H.H.Vilson : *Rugved Transelation*, भूमिका, पृ० 13-14. उद्धृत, वही., पृ० 6.

इनका मत है कि वेद, जिसका अर्थ ज्ञान है, ये चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद।[51] गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि "**इमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः।**"[52] प्रस्तुत उक्ति से प्रतीत होता है कि ऋषि को ब्राह्मणों का वेदत्व स्वीकार नहीं है, क्योंकि अन्यों के साथ 'सब्राह्मणाः' पद का भी प्रयोग किया गया है। यदि ऋषि को ब्राह्मणों का वेदत्व स्वीकार होता तो अलग से उक्त पद क प्रयोग न करते। अतः गोपथब्राह्मणकार भी केवल संहिता को ही वेद मानते हैं। सृष्टि के आदि में ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के हृदय में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रदान किया। इस प्रकार वेद में बहुत लम्बे समय में अर्जित की गई विभिन्न उपलब्धियों का संकलन है। चारो वेदों में क्रमशः ऋग्वेद ज्ञानप्रधान है, यजुर्वेद कर्मप्रधान है, सामवेद उपासना प्रधान है तथा अथर्ववेद को चारो वेदों का सार माना जाता है, जिसमें पारलौकिक विषयों के साथ-साथ इहलौकिक विषयों पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

वेदत्रयी : पर्यालोचन

वेदों की संख्या के विषय में तीन मत पाए जाते हैं। 1. वेद एक है, 2. वेद तीन हैं और 3. वेद चार हैं।

1. यास्कीय निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य का कथन है कि वेद मूलतः एक ही था। वेद को सुगम बनाने के लिए व्यास ने इसको शाखाओं में विभाजित किया-

वेद तावदेकं सन्तम् अतिमहत्त्वाद दुरध्येयमनेक शाखाभेदेन सामम्नासिषु' तथा 'सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नावन्तः।[53]

2. वेद तीन हैं, ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में तीन ही वेदों का नाम मिलता है-

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हु॒त ऋ॒चः सामा॑नि जज्ञिरे।

---

[51] Veda, meaning literally knowledge is the name given to certain ancient works which formed the foundation of the early religious belief of the hindus. These are the Rgveda, the Samveda, the Yajurveda and the Atharvaveda. Griffith : *Rgveda Translation* भूमिका, पृ० 10.

[52] *गोपथ ब्राह्मण,* 1/2/10.

[53] *निरुक्तवृति,* 1/20.

छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥[54]

शतपथ ब्राह्मण में तीन ही वेदों का उल्लेख किया गया है- **"त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः"।**[55] एतरेय ब्राह्मण में भी उक्त मत का समर्थन करते हुए कहा गया है कि –**"त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्।"**[56] अर्थात् तीनों वेद क्रमशः ऋग्वेद अग्नि से, यजुर्वेद वायु से तथा सामवेद आदित्य से उत्पन्न हुए।

3. वेदों के चतुष्टय की सूचना एवं अथर्व की सत्ता का उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है। यजुर्वेद में वर्णित है कि ''उस परम पूज्य परमात्मा से ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व उत्पन्न हुए।[57]

यद्यपि आधुनिक विद्वान् वेदों की संख्या चार मानते हैं तथापि प्राचीन शास्त्रों में वेदत्रयी शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे वेद की संख्या को लेकर मन में संशय उत्पन्न होता है। त्रयी शब्द की व्याख्या विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वेदत्रयी के अन्तर्गत ऋग्यजुः और साम की गणना की गई है - **"अहेर्बुध्नीय मन्त्रं मे गोपाय यमृषयस्त्रैविदा विदुः ऋचः सामानि यजूंषि"**[58] छान्दोग्य उपनिषद् में **"अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्**"[59] कहकर वेद को त्रयी कहा गया है। मनुस्मृति में भी ठीक इसी तथ्य को स्वीकारा गया है।[60] चतुर्दश विद्याओं में वेद की गणना त्रयी के नाम से ही की गई है। अधिकांश स्थानों पर ऋग्, यजुः और साम का ही वर्णन प्राप्त होता है, स्वतन्त्ररूप से अथर्ववेद का उल्लेख केवल यजुर्वेद में उपलब्ध होता है।[61] त्रयी के आधार पर कुछ विद्वान् अथर्ववेद की वेदता पर सन्देह करते हुए कहते हैं कि ऋग्, यजुः और साम ये ही तीन वेद हैं अथर्व को स्वतन्त्र रूप से एक वेद नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अथर्ववेद के सभी मन्त्र प्रायः अन्य तीनों वेदों से ही लिए गए हैं इसलिए वेद तो तीन ही हैं जिसके लिए त्रयी का प्रयोग

---

[54] *ऋग्वेद*, 10/90/9.

[55] *शतपथ ब्राह्मण,* 11/5/8/3.

[56] *ऐतरेय ब्राह्मण,* 5/32.

[57] *यजुर्वेद,* 31/7.

[58] *तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 1/2/1/26.

[59] *छान्दिग्य उपनिषद्,* 4/17/2-3.

[60] अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। *मनुस्मृति*, 1/23.

[61] *यजुर्वेद*, 31/7.

किया जाता है। अनिर्वाण भट्टाचार्य ने अथर्ववेद को त्रयीविद्या का परिशिष्ट एवं सम्पूरक माना है।[62] मनु का मानना है कि वेदों का मुख्य प्रतिपाद्यविषय यज्ञ है।[63] मनु के उक्त कथन के आधार पर मधुसूदन सरस्वती का मत है कि यज्ञकर्म के लिए तीन प्रस्थानों की ही आवश्यकता होती है क्रमशः ऋग्, यजुष् और साम । ऋग्वेद का ज्ञाता होता, यजुर्वेद का अध्वर्यु, सामवेद का उद्गाता। ब्रह्मा उक्त तीनों वेदों का ज्ञाता होता है। इस प्रकार अथर्ववेद का यज्ञ से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। अतः अथर्ववेद को वेद नहीं माना जाना चाहिए।[64] मधुसूदन सरस्वती का उक्त मत ठीक नहीं है क्योंकि वेदभाष्यकार आचार्य सायण भी अथर्ववेद की यज्ञपरक व्याख्या करते हैं, उन्होंने अथर्ववेद को अन्य तीनों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया है, उनका मानना है कि मन और वाणी से यज्ञ का आधा भाग ही तीनों वेदों द्वारा सम्पादित किया जाता है, शेष आधा भाग अथर्ववेद से ही सम्पादित होता है।[65] यदि उक्त मत पर विचार किया जाए तो सायण का मत समीचीन प्रतीत होता है। यज्ञ में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा की आवश्यकता होती है। ब्रह्मा तीनों वेदों के साथ अथर्ववेद का ज्ञाता होता है क्योंकि ब्रह्मा के निर्देशन में ही यज्ञ का सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न किया जाता है, वही सभी को यज्ञशेष तथा आशीर्वाद आदि देता है और अथर्ववेद में आशीर्वाद परक मन्त्रों का संकलन भी है[66] जिनसे ब्रह्मा यजमान को आशीर्वाद देता है। अथर्ववेद में विभिन्न यज्ञों का वर्णन मिलता है। जिसमें यज्ञादि के आधार पर लोक कल्याण को साधने का निर्देश दिया गया है। यज्ञकार्य सबके लिए अनिवार्य बताया गया है।[67] अभिचार कर्म का प्रयोग यज्ञ के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता है।[68] इस प्रकार 'अथर्ववेद का यज्ञ से कोई सम्बन्ध नहीं है' मधुसूदन सरस्वती का यह मत निराधार है। अतः यज्ञ की सम्पूर्णता के लिए अथर्ववेद का भी अपना महत्त्व है, इससे अथर्ववेद का वेदत्व सिद्ध होता है।

---

[62] अनिर्वाण, *वेद मीमांसा*, पृ० 117.

[63] दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुस्सामलक्षणम्। *मनुस्मृति,* 1/23.

[64] अथर्ववेदस्तु यज्ञानुपयुक्तः शान्तिपौष्टिकाभिचारादिकर्मप्रतिपादकत्त्वेनात्यन्तविलक्षण एव। *प्रस्थानभेद*-1/10, पृ० 16.

[65] वाङ्मनस् निर्वर्त्यस्य यज्ञशरीरस्य अर्धमेव त्रिभिर्वेदैर्निष्पाद्यते, अर्धान्तरं तु अथर्ववेदेन श्रूयते। उद्धृत, *अथर्ववेद एवं स्मार्त संस्कृति,* भूमिका भाग।

[66] ब्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 116.

[67] न ये शेकुः यज्ञियां नावमारुहम्०। *अथर्ववेद*, 20/94/6.

[68] राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः। अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिमदिन्तमः। *अथर्ववेदः*, 11/7/7-11, विभिन्न यज्ञों का नामशः वर्णन है।

अथर्ववेद के वेदत्व को सिद्ध करते हुए कतिपय विद्वद्गण कहते हैं कि वेदों में ज्ञान, कर्म और उपासना का ही प्रतिपादन है अतः विषयवस्तु के प्रतिपादन की दृष्टि से वेदत्रयी सिद्ध है। त्रयी को स्पष्ट करते हुए 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास' में कहा गया है कि त्रयी शब्द ऋक्, यजुष्, सामात्मक त्रिविध मन्त्ररचना-प्रकार को संकेतित करता है।[69] डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार प्राचीन साहित्य में जहाँ चारो वेदों का उल्लेख है वहाँ वेद का अभिप्राय ग्रन्थरूप चार संहिताओं से है तथा जहाँ वेद के लिए त्रयी शब्द का प्रयोग किया गया है वहाँ त्रयी पद वेद के ऋग्यजुष्-सामरूपात्मक मन्त्रप्रकार का बोधक है।[70]

इस प्रकार वेद वस्तुतः एक ही है या तीन हैं अथवा चार, यह विचारणीय प्रश्न है। बृहदारण्यक उपनिषद् में चारो वेदों ऋग्, यजुः, साम, और अथर्ववेद का नामोल्लेख किया गया है।[71] नाट्य शास्त्र में आचार्य भरतमुनि ने अथर्ववेद का नामतः उल्लेख करते हुए उससे काव्य की आत्मा कहे जाने वाले रस की उत्पत्ति स्वीकार की है।[72] कुछ विद्वानों का मानना है कि वेदों की संख्या अनन्त है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी वेदों की संख्या अनन्त मानी गई है।[73] इस प्रकार वेदों की संख्या-विभाजन के विषय में प्रायः तीन मत मने जा सकते हैं-

1. मन्त्र[74] विधा के आधार पर।
2. संहिता[75] के आधार पर।
3. विषयप्रतिपादन के आधार पर।

1. मन्त्रप्रकार विधा के आधार पर-

चूँकि वेदों में तीन प्रकार के गद्य, पद्य और मिश्रित मन्त्रों का प्रयोग है। अतः मन्त्रों की विविधता की दृष्टि से वेदों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1. **ऋक्**- यह मन्त्र का एक प्रकार है।

---

[69] उद्धृत, *संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास*, प्रथम खण्ड, पृ० 53.

[70] शास्त्री मंगलदेव, *भारतीय संस्कृति का विकास,* पृ० 57.

[71] अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। *बृहदारण्यक उपनिषद्,* 4/5-10.

[72] भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र*, 1/17-18.

[73] अनन्ता वै वेदाः, *तैत्तिरीयब्राह्मण*, 3/10/11/3.

[74] मन्+त्रन् = मन्त्र। जिसका मनन या चिन्तन किया जाए उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्राः मननात्। *निरुक्त*, 7/12, विहितार्थाभिधायको मन्त्रः। *जैमिनिन्यायमालाविस्तर*, 2/1/22. प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्राः। *अर्थसंग्रह,* पृ० 104.

[75] अतिशय सामीप्य को संहिता कहा जाता है। परः सन्निकर्षः संहिता। *अष्टाध्यायी,* 1/4/108.

ऋक् को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि '**ऋच्यते स्तूयते देवता अनया इति ऋक्**' अर्थात् जिन मन्त्रों के द्वारा देवता की स्तुति की गई है उन्हें ऋक् कहा जाता है। यह प्रायः गद्यात्मक है। 2. **साम**- यह भी मन्त्र की एक विधा है। इसको परिभाषित करते हुए मीमांसासूत्रकार कहते हैं कि '**गीतीषु सामाख्या**'[76] छन्दोबद्ध मन्त्रों को साम कहा जाता है। 3. **यजुष्**- यह भी मन्त्र की एक अनन्य विधा है। इसके विषय में कहा गया है कि "**शेषे यजुःशब्दः**"[77] अर्थात् ऋक् और साम के अतिरिक्त जो हैं वे सभी यजुष् हैं। इस प्रकार वेद गद्य, पद्य और मिश्रित विधा में लिखे गए हैं जिनके कारण इनका नाम वेदत्रयी है।

2. संहिता के आधार पर

प्राचीन काल में चारो वेद वेदत्रयी के नाम से ही जाने जाते थे। वेदव्यास ने संहिता के रूप में चार भागों में इनका विभाजन किया। देवताओं के स्तुतिपरक ऋक् प्रधान मन्त्रों को एकत्र संकलित किया। यह संकलन ऋग्वेद कहलाया। यजुष् प्रधान संकलन यजुर्वेद कहलाया। साम(गीति) प्रधान मन्त्रों का संकलन सामवेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अथर्ववेद में अथर्वाङ्गिरस ऋषियों द्वारा दृष्ट तीनों प्रकार के मन्त्रों का समावेश है। क्रमागत प्रथम तीनों वेदों में भिन्न-भिन्न ऋषिप्रोक्त मन्त्र हैं इसलिए मन्त्रों के आधार पर इनका विभाजन किया गया, परन्तु अथर्ववेद अथर्वा और अङ्गिरस नामक दो ऋषियों द्वारा प्रोक्त हैं इसलिए इसका नाम अथर्वांगिरस वेद भी है। अथर्वा द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या अधिक है, अतः उसकी प्रधानता के कारण इसका अथर्ववेद नाम प्रसिद्ध हुआ।

3. विषयप्रतिपादन के आधार पर

चूँकि वेद ज्ञान के पर्याय हैं, अतः जिस किसी भी माध्यम से ज्ञान की उपलब्धि हो वह वेद शब्द से अभिहित हो सकता है। वर्ण्य-विषय को ध्यान में रखते हुए तैत्तिरीय ब्राह्मण "**अनन्ता वै वेदाः**"[78] कहकर वेदों के आनन्त्य का प्रतिपादन करता है। इस प्रकार कतिपय विद्वानों के मत में वेदों की संख्या अनन्त है।

---

[76] *मीमांसासूत्र*, 2/1/36.

[77] *मीमांसासूत्र*, 2/1/37.

[78] *तैत्तिरीय ब्राह्मण,* 3/10/11.

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों के संहितारूप में विभाजन से पूर्व वेदों में तीन प्रकार के मन्त्र होने के कारण इनकी त्रयी संज्ञा थी, परन्तु विभाजन के पश्चात् चार संहिताओं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के नाम से प्रसिद्ध हुए। अतः अथर्ववेद की वेदसंज्ञा पर किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए। त्रयी के भी अन्तर्गत अथर्ववेद का अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि अथर्ववेद का अस्तित्व तब भी था जब त्रयी शब्द का प्रयोग किया जाता था। केवल विभाजन के आधार पर ही मतवैभिन्य दिखाई पड़ता है। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत सप्तशती की चतुर्धरी टीका में त्रयी में अथर्ववेद का अन्तर्भाव किया गया है।[79] अतः अथर्ववेद के वेदता के प्रतिपक्ष में जितने भी तर्क दिए गए प्रायः वे निराधार हैं। हाँ यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद अन्यों की अपेक्षा अर्वाचीन है, परन्तु अर्वाचीनता के आधार पर अथर्ववेद की वेदता पर सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्य तीनों के कालक्रम में भी पर्याप्त भेद है। चारो वेद विभिन्न शाखाओं, उपशाखाओं में विभक्त हैं।

वेदों का द्रष्टृत्व एवं कर्तृत्व

वेदों के कर्तृत्व को लेकर व्रजबिहारी चौबे कहते हैं कि सर्वप्रथम हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों के कर्तृत्त्व से हमारा अभिप्राय मन्त्रों के कर्तृत्व से है या संहिताओं के कर्तृत्व से है क्योंकि दोनों को समान रूप से वेद माना जाता है। उनका मानना है कि भारतीय परम्परा के अनुसार दोनों कीरचनाओं में पर्याप्त अन्तर है।[80] इस प्रकार उक्त मत को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. मन्त्रों का कर्तृत्व ।
2. संहिताओं का कर्तृत्व ।

1. मन्त्रों का कर्तृत्व

वैदिक मन्त्रों के कर्तृत्व को लेकर वेदविदों में पर्याप्त मतभेद है। 18वीं शताब्दी के अन्त तक यह माना जाता रहा है कि वेदों की रचना किसी मनुष्य ने नहीं की, यह परमात्मा की वाणी है। परन्तु 19वीं शताब्दी में मैक्समूलर, कीथ आदि विद्वानों ने परम्परोक्त तथ्य को तर्कविहीन माना और कहा कि जिस

[79] *मार्कण्डेय पुराण,* 84/9. उद्धृत, *अथर्ववेद एवं स्मार्त संस्कृति,* पृ० 74.
[80] व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ०121.

प्रकार अन्य ग्रन्थों का कोई न कोई लेखक मनुष्य होता है उसी प्रकार वेद का रचयिता भी कोई न कोई मनुष्य ही है। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के कर्तृत्व को लेकर दो मत प्रचलित हो गए-

i. अपौरुषेयता का सिद्धान्त
ii. पौरुषेयता का सिद्धान्त

i. अपौरुषेयता का सिद्धान्त

भारतीय मनीषा वेदों को अपौरुषेय मानती है अर्थात् वेद किसी पुरुषविशेष द्वारा रचित नहीं है।[81] अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह कहा गया है कि ऋग्यजुस्सामात्मक वेद की उत्पत्ति यज्ञ से हुईहै।[82] अथर्ववेद में कहा गया है कि परमेश्वर से ही ऋग्वेदादि की उत्पत्ति हुई है।[83] ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ईश्वर से ही वेदों की उत्पत्ति मानी गई है।[84] आचार्य मनु ने भी वेदों को अपौरुषेय मानते हुए कहा है कि स्वयम्भू परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेद नामक संस्था को बनाया।[85] न्याय, योग, सांख्य, मीमांसा आदि दार्शनिक सम्प्रदाय वेदों को परम सत्ता की ही रचना मानते हैं। मीमांसा दर्शन में आचार्य जैमिनि ने पूर्वमत खण्डनपूर्वक उक्त मत को तार्किक ढंग से प्रतिपादित किया है।[86] सृष्टि के आदि में जगन्नियन्ता परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के हृदय में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रदान किया। दयानन्द वेदों को पौरुषेय मानते हैं क्योंकि वे ईश्वर को पुरुषविशेष स्वीकार करते हैं। यद्यपि ईश्वर पुरुषविशेष है तथापि है तो पुरुष ही। इस प्रकार दयानन्द वेदों को पौरुषेय कहकर भी अपौरुषेयत्व का ही प्रतिपादन करते हैं। अतः आधुनिक विचारकों में दयानन्द, अरविन्दो तथा विद्यानन्द आदि भी वेदों को अपौरुषेय ही मानते हैं। इस प्रकार ऋषियों ने केवल ज्ञान का साक्षात्कार किया, न कि मन्त्रों की रचना। अतः परम्परा वेदज्ञान को ईश्वर प्रदत्त मानती है। पं. मधुसूदन ओझा के

---

[81] अपौरुषेयं वाक्यं वेदः। *अर्थसंग्रहः,* पृ०

[82] तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒: सामा॑नि जज्ञिरे । छन्दा॑सि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥ *ऋग्वेद,* 10/90/9.

[83] यत्र॒ ऋष॑यः प्रथम॒जा ऋच॒: साम॒ यजु॑र्म॒ही। ए॒क॒र्षिर्यस्मि॒न्नार्पि॑तः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः। *अथर्ववेद,* 10/7/14,20.

[84] ब्रह्म एव प्रथमसृजत त्रयीमेव विद्याम्। *शतपथ ब्राह्मण*, 6/1/1/8.

[85] सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥ *मनुस्मृति*, 1/21. अत्र 'सः' पदेन 1/6 तमे सूत्रे वर्णितः स्वयम्भूः भगवान् उद्दिष्टः।

[86] जैमिनि, *मीमांसासूत्र*, 1/1/27-45.

मत को उद्धृत करते हुए 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास' में कहा गया है कि जिस वेद को हम अपौरुषेय कहते हैं, वह शब्दात्मक वेद नहीं, प्रत्युत् तत्वात्मक वेद है।[87]

ii. पौरुषेयता का सिद्धान्त

19 वीं शताब्दी में कुछ आधुनिक विद्वानों ने परम्परागत मत को चुनौती दी और कहा कि वेद किसी अदृष्ट सत्ता द्वारा नहीं लिखे गए। सर्वप्रथम कोलब्रुक्स ने कहा कि वेद आर्यों द्वारा लिखे गए। इस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं यह दावा करना ठीक नहीं है।[88] तत्पश्चात् मैक्समूलर, रॉथ, कीथ आदि विद्वानों ने उक्त मत का समर्थन किया। अपने पक्ष में तर्क देते हुए उन्होंने कहा कि जिस प्रकार शाकुन्तल आदि ग्रन्थों के लेखक कालिदास आदि प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार वेदों का भी कोई दृष्ट लेखक अवश्य होगा। उन्होंने ऋषियों को पुरुष मानकर वेदों के रचनाकार के रूप में सिद्ध करने का प्रयास किया है। जे.म्यूर ने 'Original Sanskrit Text' नामक पुस्तक में उक्त मत का विस्तृत विवेचन किया है।[89] भारतीय विचारक तिलक वेदों का कर्ता ऋषियों को मानते हैं। उनका मानना है कि ऋषियों ने हजारों वर्षों पश्चात् अपने धार्मिक विश्वासों तथा मान्यताओं को अनेक आख्यानों आदि के माध्यम से कथन किया जो बाद में वेद कहलाया।[90] इनके मत में भी ज्ञानरूप वेद अपौरुषेय ही है तथा ऋषियों द्वारा लिपिबद्ध वेद ऋषिकर्तृक हैं। इस प्रकार तिलक का मानना है कि परम्परा उनके मत का विरोध नहीं है समर्थन ही करती है।

वेदों को पौरुषेय मानने वालों के उक्त मत को जैमिनि ने पहले ही "**वेदांश्चैके सन्निकर्ष पुरुषाख्या**"[91] कहकर उद्धृत किया है तथा "**आख्या प्रवचनाच्च**"[92] कहकर उक्त मत का निरसन भी किया है। सूत्रार्थ को स्पष्ट करते हुए शाबरभाष्य में कहा गया है कि वेदों में जो काठक, कपिष्ठल, तैत्तिरीय आदि नाम मिलते हैं, वे मन्त्रों के प्रवचन कर्ता हैं, न कि मन्त्रों के निर्माता।[93] इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों

---

[87] ओझा, मधुसूदन. *महर्षिकुलवैभवम्,* पृ० 25-96.
[88] ब्रजबिहारी चौबे, उद्धृत, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 133.
[89] वही, पृ० 133.
[90] वही, पृ० 136-137.
[91] जैमिनि, *मीमांसासूत्र,* 1/1/27.
[92] वही, 1/1/30.
[93] *तर्कपाद*, शाबरभाष्य, पृ० 102.

ने जिस वेद को पौरुषेय कहा है वह संहितात्मक वेद है। भारतीय परम्परा जिसको अपौरुषेय मानती है वह तत्त्वात्मक वेद है। अतः संहिता तो पुरुषकृत हैं परन्तु उसमें निहित ज्ञान अपौरुषेय है। ऋषियों के दर्शन से पूर्व भी तज्ज्ञान की सत्ता विद्यमान थी। शोधकर्त्ता की दृष्टि में अथर्ववेद एक ग्रन्थ है, जो भारतीय परम्परा के प्राचीन पुस्तकों में से एक है। शोधकर्त्ता उक्त तथ्य को ध्यान में रखकर अपने शोध में प्रवृत्त हुआ है।

2. संहिताओं का कर्तृत्व

पुराणों में वेदविभाजन के लिए यज्ञ को आधार बताया गया है।[94] अर्थात् यज्ञ के आधार पर ही वेदों का विभाजन हुआ। संहिताओं के कर्तृत्व को लेकर विद्वानों में मतैक्यता का अभाव है। संहिताओं के मूल संकलनकर्ता को लेकर तीन आचार्यों का नामोल्लेख किया जाता है। 1. **अपान्तरतमा-** ये व्यास से पूर्व के आचार्य माने जाते हैं। अहिर्बुध्न्य संहिता में कहा गया है कि विष्णु की आज्ञा से त्रेता के प्रारम्भ में अपान्तरतमा ने वेदों का विभाग किया।[95] आचार्य शंकर व्यास को अपान्तरतमा का ही अवतार माना है। 2. **अथर्वा-** सत्यव्रत सामश्रमी का मानना है कि यज्ञ के आधार पर अथर्वा ने संहिताओं का विभाग किया। अथर्वा ही यज्ञ के प्रथम उपकारक थे। उक्त मत की पुष्टि में उन्होंने '**यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्ततेे**'[96] '**त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत**'[97] आदि मन्त्रों को उद्धृत किया है। 3. **वेदव्यास-** तृतीय मत के अनुसार मन्त्रों के आदि संकलनकर्त्ता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं। वेदव्यास से पूर्व ऋग्यजुष्-सामात्मक वेद संकलित नहीं हुए थे। ऋषि लोग अपने-अपने आश्रमों में अपने शिष्यों को पढाया करते थे। व्यास ने सभी मन्त्रों को एकत्र संकलित किया तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में सम्पूर्ण वेद को चार संहिताओं में विभक्त किया। ऋक् प्रधान वेद ऋग्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ, यजुष् प्रधान वेद यजुर्वेद कहलाया, सामगान प्रधान वेद सामवेद हुआ तथा अथर्ववेद में तीनों का समवाय है। अतः

---

[94] एक एवासीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्। चातुर्होत्रमभूत्तस्मिन् तेन यज्ञमकल्पयत्॥, *वायुपुराण,* 42/17.

[95] अथ कालविपर्यासाद् युगभेदसमुद्भवे॥ 50. त्रेतादौ सत्त्वसंकोचाद्रजसि प्रविजृम्भिते॥ 51. अपान्तरतमा नाम मुनिर्वाक् संभवो हरेः॥ 53. उदभूत्तत्र धीरूपमृग्यजुःसामसंकुलम्॥ 58. अहिर्बुध्न्यसंहिया अध्याय-11. उद्धृत, व्रजबिहारी चौबे, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 96.

[96] *ऋग्वेद,* 1/83/5.

[97] वही, 6/16/13.

संहिताओं के कर्ता कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं। वेदों के विभाजक होने के कारण इनको वेदव्यास कहा जाता है। इस मत के सबसे अधिक साक्ष्य मिले हैं तथा इसी मत को ही अधिकतर विद्वान् स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार वेदों के कर्तृत्व को लेकर दोनों मतों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह सिद्ध होता है कि वेदों का ज्ञानरूपात्मक स्वरूप ईश्वर प्रोक्त है तथा संहिता रूपात्मक मनुष्यकृत। प्राचीन आचार्यों ने संहिताओं में सन्निहित ज्ञान को वेद मानकर उसको अपौरुषेय माना है। शोधार्थी की दृष्टि में ज्ञान एक नित्य सत्ता है जो परिस्थितिवश आत्मा में समुद्भूत होता है। इस प्रकार ज्ञान शाश्वत सत्ता है चाहे वह वेदोक्त हो या किसी अन्य द्वारा प्रोक्त हो। यदि इस दृष्टि से देखें तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ज्ञान की सत्ता शाश्वत है। मनुष्य का शरीर ज्ञान प्राप्ति का एक माध्यम है। अतः यदि वेदों को अपौरुषेय माना जाए तो सभी ज्ञान को अपौरुषेय माना जाना चाहिए, चाहे वह संहिताओं में निहित हो या ब्राह्मणों या स्मृतियों में। अतः केवल ज्ञान अपौरुषेय हो सकता है संहितात्मक वेद नहीं। इस प्रकार वेद एक ज्ञान राशि है जो संहिताओं के रूप में उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद : परिचयात्मक अध्ययन

अथर्ववेद का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रमाणित हो जाने के पश्चात् उसके अर्थगत सौष्ठव पर विचार कर लेना आवश्यक है। अथर्ववेद में संशयों का निवारण किया गया है[98] इसलिए अथर्व शब्द को संशयार्थक 'थर्व' धातु से निष्पन्न माना गया है। अथर्वन् शब्द की व्युत्पत्ति 1. अथ पूर्वक 'ऋ गतौ'[99] धातु से क्वनिप् प्रत्यय[100] द्वारा अथवा 2. थर्व संशयार्थक धातु से अच् प्रत्यय व नञ् समास से 3. अथ पूर्वक अवाङ् (निश्चल व मङ्गलशील) द्वारा होती है।[101] अथर्ववेद की व्युत्पत्ति करते हुए निरुक्तकार का मानना है कि अथर्व शब्द गत्यर्थक थर्व धातु से बना है, इस प्रकार न थर्वनिति अथर्वन्।[102] जिससे चाञ्चल्यादि गति का ह्रास हो जाए, वह अथर्ववेद है। अतः जिस वेद के श्रवण मनन निदिध्यासन आदि के द्वारा व्यक्ति परम लक्ष्य को प्राप्त करके निश्चल और निष्पन्द रूप में स्थित हो जाए, वह अथर्ववेद है। इस प्रकार परमगति का सरलतम मार्ग प्रशस्त करने के कारण इसका नाम अथर्ववेद रखा गया। गोपथब्राह्मण में

---

[98] थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः। यास्क, *निरुक्त,* 11/18.

[99] *धातुपाठ,* 9/28, पृ० 45.

[100] *अष्टाध्यायी,* 3/2/75.

[101] *गोपथ ब्राह्मण*, पृ० 8.

[102] अथर्वाणोऽथनवन्तः। थर्वतिश्चगतिकर्मा। तत्प्रतिषेधः। *निरुक्तम्,* 11/18.

अथर्वाक् से अथर्वन् की व्युत्पत्ति मानी गई है। अथ + अर्वाक् = अथर्वा। जिसका अर्थ होता है वह वेद जिसमें आत्मा को अपने अन्दर देखने की विद्या का विधान किया गया है।[103] थर्व धातु हिंसा के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। ऐसी अवस्था में हिंसा से रहित वेद को अथर्ववेद कहना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि अथर्व शब्द अभिचार का बोधक है। अभिचार एक प्रकार के तन्त्र-मन्त्र की प्रक्रिया है जिसका उपयोग शत्रु के विघात, लोककल्याण आदि के लिए किया जाता है। थर्व धातु का अर्थ संशय, कुटिल आचरण और हिंसा मानने पर अथर्वा से निःसन्देह निश्चल व हिंसारहित व्यक्ति अभिप्रेत है। अथर्ववेद में रोगों को दूर करने के लिए, दुष्ट-नाश के लिए व सुखप्राप्ति के लिए विभिन्न प्रार्थनाएँ व उपाय वर्णित किए गए हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार सूत्रकाल से पूर्व अथर्ववेद का उल्लेख नहीं मिलता है।[104] स्वामी दयानन्द अथर्ववेद के विषय में कहते हैं कि ईश्वर ने इसका प्रकाश इसलिए किया कि जिससे तीनों वेदों की अनेक विद्याओं के सब विघ्नों का निवारण और उसकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके। अनेक स्थलों पर 'थर्व' धातु को हिंसापरक मानते हुए 'अथर्व' का अहिंसक अर्थ किया है।[105] ज्ञानकाण्ड के लिए ऋग्वेद, क्रियाकाण्ड के लिए यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिए सामवेद और शेष अन्य रक्षाओं के प्रकाश करने के लिए अथर्ववेद का प्रकाश किया गया।[106] श्री अरविन्द के अनुसार दयानन्द का भाष्य इस प्रकार की तोड़-मरोड़ नहीं करता है अपितु 'अष्टाध्यायी' और 'निरुक्त' के अनुसार प्रकृति और प्रत्यय के योग से जो अर्थ निकलता है, और अन्यान्य आर्ष-ग्रन्थों की कसौटी पर जो खरा उतरता है, दयानन्द को वही अर्थ मान्य है।[107] अथर्ववेद के विषय में मल्लिनाथ ने कहा है कि- शामः शान्तिरभ्युदयकाले दीप्तता उग्रताऽभिचारकाण्डे ताभ्यामनुपमाभ्यां गरीयानुदग्रः। अथर्वणा वशिष्ठेन कृता रचना पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः। चतुर्थवेद इत्यर्थः।[108]

अथर्ववेद में प्रायः दो प्रकार के मन्त्रों का संकलन है। 1. शान्तिक-पौष्टिक मन्त्र तथा 2. अभिचारबोधक मन्त्र। शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रों में औषधियों तथा कर्त्तव्याधिकारों आदि का वर्णन

---

[103] अथ अर्वाग् एनं …..अन्विच्छेति, तद् यद् अब्रावीद अथर्वाङ् एनमेतासु अप्सु- अन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत्। *गोपथब्राह्मण* पूर्व०1/4. उद्धृत, कपिलदेव द्विवेदी, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* पृ० 95.

[104] राजवीर, *वैदिककोषः विमर्श टीकया सहितः*, पृ०11.

[105] वही, पृ० 29.

[106] *दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में इन्द्र और मरुत् का स्वरूप : एक समीक्षात्मक अध्ययन*, *पृ०* 21.

[107] कृष्ण लाल, *वैदिक चिन्तन*, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1990, *पृ०* 81.

[108] *अथर्ववेद एवं स्मार्त संस्कृति,* भूमिका, पृ० 8.

है। अभिचारपरक मन्त्रों में विभिन्न अभिचार कर्मों का। अथर्ववेद के प्रवर्तक के रूप में प्रायः दो ऋषियों के नाम आता है अथर्वा और अङ्गिरा। शान्तिकपौष्टिकादि मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि अथर्वा हैं तथा अभिचारपरक मन्त्रों के द्रष्टा अङ्गिरस हैं। इसीलिए अथर्ववेद को अथर्वाङ्गिरस वेद भी कहा जाता है। मन्त्राधिक्यादि के आधार पर कुछ विद्वान् उक्त दोनों ऋषियों के साथ-साथ भृगु को भी अथर्ववेद का प्रवर्तक मानते हैं।[109]

कुछ विद्वानों का मानना है कि अथर्ववेद में शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्र ही थे। अभिचारपरक मन्त्रों को बाद में जोडा गया। अपने मत को पुष्ट करने के लिए इन्होंने गोपथब्राह्मण के अथर्वणो वेदोऽभवत् (11/5) तथा अङ्गिरसो वेदोऽभवत् (11/18) के अलग-अलग कथन का तथा शतपथब्राह्मण में इनके अलग-अलग कथन का उल्लेख किया है।[110] उक्त तथ्य को पूर्णतः सत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि तैत्तिरीयब्राह्मण आदि मे अथर्वाङ्गिरस शब्द से सम्पूर्ण अथर्ववेद का ही ग्रहण किया जाता है। तथापि यह एक दृष्टि है इस विषय पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

इसके कुल मन्त्रों की संख्या 5987 है, जिसमें से लगभग 1200 मन्त्र ऋग्वेद से तथा लगभग 1000 मन्त्र यजुर्वेद से लिए गए हैं। एक ही मन्त्र दोनों वेदों में अलग-अलग विनियोगार्थ में पढ़ा गया है। ऋग्यजुसाम वेद में पढ़े गए मन्त्रों का विनियोग सोमयाग प्रधानता वाले श्रौतकर्म में होता है, जिनका लक्ष्य अमृतत्त्व की प्राप्ति है, जबकि अथर्ववेद में पढ़े गए मन्त्र का विनियोग गृह्यकर्म में है, जिसका लक्ष्य शान्ति और पौष्टिक कर्म की सहायता से अभ्युदय की प्राप्ति।[111] इस प्रकार एक ही मन्त्र का दोनों वेदों में अलग-अलग पढ़ने का अलग-अलग प्रयोजन है। प्रयोजन के आधार पर भी यह सिद्ध होता है कि अथर्ववेद का स्वतन्त्र अस्तित्त्व है।

महाभाष्य में अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया गया है।[112] सायण ने नौ शाखाओं का नामतः उल्लेख किया है- 1. पैप्पलाद 2. तौद 3. मौद 4. शौनकीय 5. जालज 6. जलद 7. ब्रह्मवेद 8. देवदर्श और 9. चारणवैद्य। इनमें से अद्यतन केवल दो शाखाएँ ही उपलब्ध होती हैं 1. शौनकीय और

---

[109] स्वतन्त्र रूप से अथर्वा के लगभग 1612, अङ्गिरा के लगभग 231 तथा भृगु के लगभग 224. मन्त्र हैं। इन्हीं तीनों की मन्त्र संख्या सबसे अधिक है। उद्धृत, *वेद मीमांसा,* पृ०117.

[110] कपिलदेव द्विवेदी, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* पृ० 150.

[111] अनिर्वाण, *वेद मीमांसा*, पृ०118.

[112] नवधाऽऽथर्वाणः। *महाभाष्य,* पस्पशान्हिक, 1.

2. पैप्पलाद। इनमें भी केवल शौनकीय शाखा ही पूर्ण रूप से उपलब्ध है, जिसमें कुल 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं, जो 20 काण्डों में विभक्त है। काण्ड भी अनुवाकों तथा प्रपाठकों में विभक्त हैं। पैप्प्लाद शाखा अद्यतन अपूर्ण प्राप्त है।

अथर्ववेद का रचनाकाल

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधारभूत स्तम्भ वेद हैं, जो विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में निर्विवादित रूप से प्रतिष्ठित हैं, किन्तु समस्या केवल प्राचीनतम होने को लेकर नहीं अपितु उसके प्राचीनतम काल को लेकर है। वेदों के काल निर्धारण की समस्या आज भी विद्वानों के लिए अनसुलझी गुत्थी बनी हुई है। बेवर ने यहाँ तक कह दिया कि वेदों के काल निर्धारण की दिशा में किए गए सभी प्रयत्न निरर्थक ही सिद्ध होंगे।[113] इसी प्रकार अन्य पाश्चात्य विद्वान् ह्विटनी, विन्टरनित्स आदि भी बेवर के मत का समर्थन करते हैं।[114] यद्यपि वेदों का काल-निर्धारण अत्यन्त कठिन कार्य है तथापि विश्व के अनेक पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने इस विषय में भाषावैज्ञानिक, पुरातात्विक, लिखित सामग्री के अध्ययन एवं ज्योतिष इत्यादि के आधर पर इसके काल निर्धारण का प्रयास किया है। पाश्चात्य विद्वानों में मैक्समूलर, जैकोबी, विन्टरनित्ज़, ब्लूमफील्ड तथा पौर्वात्य विद्वानों में बाल गंगाधर तिलक, दयानन्द, अरविन्दो आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रायः सभी विद्वानों के कालनिर्धारण का आधर भाषा-वैज्ञानिक तथा ज्योतिषीय पक्ष रहा है। परम्परागत भारतीय विचारक वेदों को अनादि और ईश्वप्रदत्त स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में वैश्विक विद्वानों में प्रतिष्ठित हो चुका है। भारतीय परम्परा वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानती है। चूँकि ईश्वर नित्य है इसलिए उसका ज्ञान भी ईश्वर के समान ही नित्य है, किन्तु अनेक विदेशी इतिहासकारों, प्राच्यविद वेद को मानव निर्मित सिद्ध करने का प्रयास किया है तथा वे इसकी समयसीमा 1000 ई.पू. से 6000 ई.पू. के मध्य स्वीकार करते हैं। उनके निष्कर्षों का आधर मुख्यतः भाषा-विज्ञान व ज्योतिष रहा है और इसी आधर पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धान्त भी स्वीकार किया गया है।

---

[113] बेवर : *Hishtory of Indian literature*. Page-6-7.

[114] विस्तृत जानकारी हेतु द्रष्टव्य, *वैदिक वाङ्मय : एक अनुशीलन*, पृ० 147.

पाश्चात्य प्राच्यविदों में सर्वप्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने वेदों के काल निर्धारण में जो युक्ति अपनाई, वह बौद्ध धर्म की ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध उत्पत्ति के सिद्धान्त पर आधारित है। उनके अनुसार 500 ई.पू. तक सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य का निर्माण हो चुका था। इसके पश्चात् वैदिक ग्रन्थों के काल को उन्होनें सूत्र, ब्राह्मण, संहिता और मन्त्र काल में विभाजित किया और प्रत्येक के मध्य 200 वर्षों का अन्तर रखा। इस प्रकार मैक्समूलर ने अथर्ववेद की अन्तिम सीमा 600-400 ई.पू. के मध्य स्वीकार की, किन्तु यहाँ ध्यातव्य यह है कि मैक्समूलर ने विभिन्न कालों के लिए, जो 200 वर्षों का अन्तर रखा वह केवल अनुमान के आधर पर न्यूनतम वर्षों का अन्तर था न कि अधिकतम। इस तथ्य की पुष्टि स्वयं मैक्समूलर के शब्दों से हो जाती है-

"If now we ask how we can fix the date of these three period, it is quite clear that we can't hope to fix a terminus a quo. Weather the Vedic Hymns were composed 1000, or 1500 or 2000, or 3000 years B.C. no power on earth will ever determine"[115]

उक्त कथन के अनुसार सूत्र, ब्राह्मण, संहिता अथवा मन्त्रा-रचना का कोई क्रम नहीं है तथा किसी भी प्रकार से वेदों का काल निर्धारित नहीं किया जा सकता। ए.सी. क्लैटन भी मैक्समूलर सदृश ही पूर्ववर्ती प्राच्यविद्वानों के मतों की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि –

''From what has already been said, it will be evident that no dates can be assigned to the origin of the hymns that make up the Vedas, Indeed it is necessary to go further and so say that there is no sufficient evidence to show with any precision when the hymns of the four Vedas were collected together and the Vedas themselves as we have them formed''[116]

प्राच्यविद् मौरिस ब्लूमफील्ड ने वैदिक काल निर्धारण के विषय में अपने से पूर्व अनेक मतों का समीक्षा की और वैदिक काल को कम से कम 2000 ई.पू. स्वीकार करने का आग्रह किया-

---

[115] *Physical Religion : The Gifford Lectures,* P. 91.

[116] *The Rigveda and Vedic Religion*, P. 45.

''I for my part, and I think I voice many scholars no much more inclined to listen to an early date. Say 2000 B.C. for the beginning of Vedic literary production and to a much earlier date for the beginning of the institution, ... Anyhow we must not be beguiled by that kind of conservativism which merely salves the conscience into thinking that there is better proof for any later date such as 1500, 1200 or 1000 B.C. rather than the earlier date of 2000 B.C., 'Once more frankly' we don't know''[117]

आधुनिक भारत में वेदों के काल निर्धारण का सर्वप्रथम प्रयास बाल गंगाधर तिलक द्वारा किया गया। उन्होनें मृगशीर्ष काल में वसन्त सम्पात के आधर पर वेदों का काल निर्धारित करते हुए अथर्ववेद का रचनाकाल 2500 ई०पू० से 1400 ई०पू० तक माना है, किन्तु इस बात को उन्होंने ने कभी दृढ़तापूर्वक न रखकर एतद्विषयक विद्वानों के विचार के लिए अवकाश रखा है-

''It is Sanskrit scholar who have all to decide if my interpretation of certain texts are correct....The method of investigation followed by me is the same as that adopted by Bentley, Colebrooke and other well known writers of the subject, and in my opinion"[118]

''I can't claim to have finally solved this important problem in all its bearing"[119]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रायः विद्वानों के वैदिक काल निर्धारण का आधार ऐतिहासिक ज्योतिषीय और भाषावैज्ञानिक साक्ष्य रहे हैं, किन्तु वेदों के काल को पूर्णरूपेण इदमित्थम् कहने का साहस किसी विद्वान् में नहीं हुआ। वहीं दूसरी ओर प्रस्तुत प्रसंग में भारतीय परम्परागत विद्वान् वेदों को अनादि मानकर उसके काल विषयक मत से सन्तुष्ट हो जाते हैं। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी द्वारा किए गए प्रमुख काल निर्धारण के प्रयासों को निम्नरूपेण सूचीबद्ध किया गया है-

---

[117] The Religion of The Vedas, P. 20.

[118] *The Orion*, Preface.

[119] *The Orion*, P.2.

क्र.सं.	मत-प्रतिपादक	आधार	रचना काल
1.	दयानन्द सरस्वती	वेदमन्त्र	सृष्टि का प्रारम्भ
2.	दीनानथ शास्त्री चुलेट	ज्योतिष	3 लाख ई०पू०
3.	अविनाश चन्द्र	भूगर्भ	25000 ई०पू०
4.	नारायण भवनराव पावगी	भूगर्भ और ज्योतिष	7000 ई०पू०
5.	बाल गंगाधर तिलक	ज्योतिष	6000 ई०पू०
6.	आर.जी. भण्डारकर	वेदमन्त्र	6000 ई०पू०
7.	शंकर बालकृष्ण दीक्षित	ज्योतिष	3500 ई०पू०
8.	एच. जैकोबी	ज्योतिष	4500-2500 ई०पू०
9.	विन्टरनित्ज़	मितानी शिलालेख	2500 ई०पू०
10.	मैक्समूलर	बौद्ध साहित्य	1200 ई०पू०

अथर्ववेद पर उपलब्ध भाष्य

अथर्ववेद जनमानस के बहुत नजदीक रहा है इसलिए इस पर विद्वानों की विशेष दृष्टि रही है। अथर्ववेद पर उपलब्ध भाष्यों तथा अनुवादों का विवरण निम्न है-

क्र.	पुस्तक	भाष्यकार/ अनुवादक	प्रकाशक/ स्थान	भाषा
1	अथर्ववेद संहिता		वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1901 ई०	संस्कृत
2	अथर्ववेद(शौनकीय)	आचार्य सायण	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1898 ई०	संस्कृत
3	अथर्ववेद संहिता (ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, पुर्वाक्, भूसंहिता)		विरजानन्द यन्त्रालय, लाहौर	संस्कृत

4	Atharva Ved Samhita	रोनाल्ड रॉथ	बर्लिन, जर्मनी	अँग्रेजी
5	अथर्ववेद भाष्य	पण्डित क्षेमकरण त्रिवेदी	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 1920 ई०	हिन्दी
6	अथर्ववेद भाष्य	प्रज्ञा कुमारी		हिन्दी
7	अथर्व वेद भाष्य	सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा	1973 ई०	हिन्दी
8	अथर्व वेद भाष्य		दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, 1974 ई०	हिन्दी
9	अथर्व वेद भाषाभाष्य (चार भाग)	पण्डित जयदेव शर्मा विद्यालंकार	1928 ई०	हिन्दी
10	अथर्ववेद का सुबोध भाष्य (3 भाग)	दामोदर सातवलेकर		हिन्दी
11	अथर्व वेद भाषाभाष्य (चार भाग)	प्रो. राजाराम	लाहौर, 1929 ई०	हिन्दी
12	अथर्व वेद का आयुर्वेद परक भाष्य	हरिशंकर शर्मा, दीक्षित नगीना	बिजनौर	हिन्दी
13	अथर्व वेद मुनि भाष्य (3 काण्डों पर)	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	1974	हिन्दी
14	अथर्व वेद भाष्य	प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार	राणा प्रताप सिंह ट्रष्ट, करनाल	हिन्दी
15	अथर्व वेद संहिता	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली	संस्कृत
16	अथर्व वेद (9 भाग)	पण्डित विश्वनाथ वेदोपाध्याय	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली	हिन्दी

17	Atharva Ved (2 Volums)	आचार्य विद्यानाथ शास्त्री	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली	अँग्रेजी
18	अथर्ववेद भाष्यम् (3 भाग)	हरिशरण सिद्धान्तालंकार	श्री घूड़मल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, राजस्तान, 2011 ई०	हिन्दी
19	अथर्व वेद भाष्य	Online – आर्य समाज, जमना नगर	http://www.aryasamajjamnagar.org/atharvavedabook.htm	हिन्दी

उपर्युक्त विवरण के अतिर्रिक्त-

- ग्रिफिथ ने 1896 में, व्हिटनी ने 1905 में तथा ब्लूमफील्ड ने अथर्ववेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया।
- ल्यूडविक ने अथर्ववेद के कुछ भागों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया।

अथर्ववेद से सम्बन्धित अन्य साहित्य

अन्य तीनों वेदों की भाँति अथर्ववेद पर भी विभिन्न साहित्य उपलब्ध होते हैं जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है-

ब्राह्मण	1. गोपथ ब्राह्मण और 2. पैप्पलाद ब्राह्मण
उपनिषद्	शौनकीय शाखा से सम्बन्धित दो उपनिषदें-1. मुण्डक और 2.माण्डूक्य तथा पैप्पलाद शाखा से सम्बन्धित एक उपनिषद् है 3.प्रश्नोपनिषद्।
शिक्षा और प्रातिशाख्य	1. अथर्वप्रातिशाख्य या शौनकीय चतुरध्यायिका 2. अथर्ववेद प्रातिशाख्यसूत्र 3. अथर्वप्रातिशाख्य

	4. माण्डूकी शिक्षा
कल्पसूत्र	1. वैतान श्रौतसूत्र और 2. कौशिक गृह्यसूत्र

अथर्ववेद का वैशिष्ट्य

सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अथर्ववेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वेद सामान्य जन-जीवन के बहुत नजदीक है। अन्य तीनों वेद मनुष्य जीवन के पारलौकिक सुख में सहायक प्रतीत होते हैं परन्तु अथर्ववेद एकमात्र ऐसा वेद है, जो लौकिक जीवन को अधिक महत्त्व देता है। कुछ आचार्यों ने अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्वेद को अधिक महत्त्व दिया है। उनका मानना है कि अन्य तीनों वेद स्वर्गप्राप्ति आदि पारलौकिक विषय को ही अपने चिन्तन का विषय बनाते हैं जबकि अथर्ववेद पारलौकिक सत्ता के साथ-साथ लौकिक सत्ता पर भी सूक्ष्मता से विचार करता है तथा दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार के फल को देने वाला है। आचार्य सायण उक्त सन्दर्भ में अपना मत देते हुए कहते हैं कि यह वेद लौकिकजीवन में ही कर्मों का फल प्रदान करता है इसलिए यह अन्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण है।[120] व्यक्ति के लौकिक जीवन से सम्बन्धित जितनी भी मर्यादाएँ हैं, अथर्ववेद सबका अत्यन्त सूक्ष्मता से विवेचन करता है। कपिलदेव द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति' में विस्तार से अथर्ववेद की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अथर्ववेद वेद से ही ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि साहित्यों का विस्तार माना है।[121] गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यज्ञ में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा ये चार ऋत्विक् होते हैं। जिनमें होता ऋग्वेद का, अध्वर्यु यजुर्वेद का, उद्गाता सामवेद का तथा ब्रह्मा जो सम्पूर्ण यज्ञ का निरीक्षण करता है तथा जिसके तत्त्वावधान में यज्ञकार्य सम्पन्न किया जाता है।ब्रह्मा अन्य तीनों ऋत्विजों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, उसको अथर्ववेद का ज्ञाता होना चाहिए।[122] जयन्त भट्ट ने न्यायमञ्जरी में चारो वेदों की शृंखला में अथर्ववेद का प्राथम्य दर्शाया है।[123] मैक्डानल ने भी कहा है कि सभ्यता के अध्ययन के लिए ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद कहीं अधिक

---

[120] व्याख्याय वेदत्रितयम् आमुष्मिकफलप्रदम्। एहिकमामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति॥ सायण, *अथर्ववेदभाष्यम्*, उपोद्घात् श्लोक- 10.

[121] *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* पृ० 96.

[122] ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व। यजुर्विदमध्वर्युम्। सामविदमुद्गातारम्। अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्। *गोपथब्रह्मण,* 1/3/2.

[123] *न्यायमञ्जरी,*

महत्त्वपूर्ण है।[124] यह वेद जनसामान्य से साक्षात् सम्पर्क स्थापित करता है। इस वेद में ज्ञान, कर्म और उपासना का समवाय है अतः इसको तीनों वेदों का सार कहा जाता है।

यह वेद पूर्णतः सामाजिक विकास पर आधारित है। इसमें संस्कृति और सभ्यता के साथ-साथ मानवीय मूल्यों का भी विशद् विवेचन हुआ है। अतः यह लौकिक जगत् से साक्षात् सम्बद्ध होने के कारण लैकिक जगत् के लिए अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद का अधिक वैशिष्ट्य है। लौकिक जीवन से ही परम गति की दिशा तय होती है। मानव का आचार विचार उसके स्वर्ग प्राप्ति में अत्यन्त सहायक होता है। परम गति की दिशा में अग्रसर होने का प्रथम प्रयास अथर्ववेद से ही प्रारम्भ होता है क्योंकि अथर्ववेद इसके लिए एक स्वस्थ पृष्ठभूमि तैयार करता है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की ओर अथर्ववेद का अप्रतिम योगदान है। चिकित्सा आदि के क्षेत्र में आधुनिक विकास का आदि श्रेय अथर्ववेद को ही मानना चाहिए क्योंकि औषधीय गुणों की सर्वप्रथम जानकारी अथर्ववेद से ही संभव हो सकी है। समाज को सुचारु रूप से संचालन के लिए अथर्ववेद विभिन्न नैतिक मूल्यों को आवश्यक मानता है। समाज में नैतिक उत्कर्ष जितना अधिक होगा वह समाज उतना ही अधिक उन्नत होगा। नैतिकता का तात्पर्य मानवीय कर्त्तव्यों से है। वेद की भाषा में कर्त्तव्य को ही धर्म कहा गया है। धर्म उसी की रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है। जो व्यक्ति धर्म का पालन नहीं करता है धर्म उसका विनाश कर देता है।[125] कर्त्तव्य के साथ-साथ अधिकार की भी चर्चा होती है क्योंकि दोनों एक-दूसरे के सम्पूरक हैं। वैदिक सभ्यता के मूल में कर्त्तव्यों के साथ-साथ अधिकार भी निहित हैं, जो समरसतापूर्ण समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। आधुनिक समाज में वेद का समाज दर्शन अत्यन्त उपादेय है। अथर्ववेद अधिकार और कर्त्तव्य को समाज का अभिन्न अङ्ग मानता है। इनके अभाव में मनुष्य मात्र का जीवन अत्यन्त दुष्कर हो जाएगा। अधिकार व्यक्ति के कर्त्तव्यों के दृष्ट फल हैं, जो कर्त्तव्यों के साथ-साथ मिलते रहते हैं। यदि समाज में अधिकार और कर्त्तव्य का समुचित निर्धारण नहीं किया जाए तो पूरे समाज में अराजकता व्याप्त हो जाती है।

॥इति॥

[124] मैक्डानल, *संस्कृत साहित्य का इतिहास* (हिन्दी अनुवाद), पृ० 172.

[125] धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो बधीत्॥ *महाभारत*, वनपर्व, 313/128.

2

द्वितीय अध्याय

मानवाधिकार : उद्भव एवं विकास

अधिकार और कर्त्तव्य सामाजिक जीवन के दो मुख्य आधार स्तम्भ हैं। इनके अभाव में समाज की कल्पना निरर्थक-सी प्रतीत होती है। सामाजिक जीवन की ये दोनों ही विधाएँ परस्पर एक-दूसरे की सम्पूरक हैं। इनकी स्थिति के आधार पर ही मानव समाज की दिशा और दशा का निर्धारण होता है। जिस समाज में इनका अनुपालन समुचित प्रकार से किया जाता है, वह समाज उतना ही उन्नत होता है और जहाँ इनके अनुपालन में अनिश्चितता होती है, वहाँ जनाधिक्य असन्तुष्ट और संवेदनाविहीन हो जाता है। इसलिए किसी भी समाज में इन दोनों ही पक्षों पर समान रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। अधिकार और कर्त्तव्य की अवधारणा प्रायः एक समाज में रहने वाले लोगों का पारस्परिक समझौता है। भारतीय परम्परा में उक्त समझौते के अनुपालन को धर्म के नाम से अभिहित किया गया है। अधिकारों और कर्त्तव्यों के द्वारा समाज के सम्पूर्ण शासनतन्त्र के नियमन का विधान है। समाज का प्रतिनिधि राजा भी धर्माधीन शासनादेश में अनुबद्ध होता है। धर्मानुकूल आचरण करने वाला व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ माना जाता है। अधिकार और कर्त्तव्य दोनों ही धर्म शब्द में अनुस्यूत हैं। इस प्रकार धर्म शब्द केवल कर्त्तव्यों का ही नहीं अपितु अधिकारों का भी बोधक है। आत्म कल्याण पूर्वक जीवमात्र के उत्थान हेतु समुचित वातावरण का निर्माण करना प्रत्येक मनुष्य का अधिकार और कर्त्तव्य दोनों ही है। किसी भी समाज में अधिकार और कर्त्तव्यों का उपयुक्त समन्वय समाज में सुख और शान्ति के वातावरण का निर्माण करता है। वैदिक समाज में प्रायः कर्त्तव्य- प्रधान समाज था। समाज की यह अवस्था भी मानव के उत्थान के

लिए उपयुक्त है परन्तु इसमें नैतिकता का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। यदि सभी व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्यों का समुचित पालन करें तो सभी के अधिकारों की प्रतिपूर्ति स्वतः ही होने लगेगी। प्रत्येक व्यक्ति को कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विश्लेषण करके ही व्यवहार में प्रवृत्त होना चाहिए। इसलिए वेद मानविचित कर्त्तव्याकर्त्तव्यों का विशद् विवेचन करता है। कर्त्तव्य दूसरों के अधिकारों की रक्षा करते हैं और अकर्त्तव्य हनन। दूसरों के अधिकारों के हनन से ही सामाजिक समस्याएँ समुद्भूत होती हैं। इसलिए प्राचीन साहित्यों में कर्त्तव्य की प्रधानता दृष्टिगत होती है। प्राचीन भारतीय समाज में अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों का प्राथम्य स्वीकारा गया है, क्योंकि कर्त्तव्य स्वकीयाश्रित होता है और अधिकार हमें दूसरों से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक के कर्त्तव्यानुपालन में दूसरों के अधिकारों की सुरक्षा सन्निहित होती है। आधुनिक समाज अधिकार-प्रधान है। कर्त्तव्यों का निर्धारण अधिकारों की सुरक्षा के अधीन है। कोई भी व्यक्ति उसी कार्य के लिए स्वतन्त्र है जिससे किसी के अधिकार बाधित न होते हों। अधिकारों के प्रति जागरूकता भी समाज को एक नई दिशा देती है। जिस समाज में व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक होगा उस समाज में शोषण उतना ही कम होगा। शोषक और शोषित प्रत्येक समाज में रहते हैं, जब इनमें इनकी अवस्था ही अधिकार और कर्त्तव्यों की प्रधानता निर्धारित करती है। शोषित के ऊपर हो रहे अतिशय अत्याचारों[1] ने उनको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया और आधुनिक समाज अधिकार-प्रधान हो गया।

प्राचीन काल से ही प्राकृतिक अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए समान हैं। समाज में सभी को आत्मोत्थान के अधिकार का प्रावधान किया गया है। यद्यपि कालान्तर में वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में अनेकों विकृतियाँ आयीं, तथापि भारतीय परम्परा के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में समानता, स्वतन्त्रता आदि विभिन्न अधिकारों के विषय में व्यापक दृष्टिकोण उपलब्ध होता है। ये अधिकार जनसामान्य के अधिकार हैं, इसलिए इनको मानवाधिकार कहा जा सकता है। मानवाधिकार का सिद्धान्त आधुनिक समाज के बहुचर्चित विषयों में से एक है, जिसको लेकर आज सम्पूर्ण विश्व अपने-अपने तरीके से काम कर रहा है। ये मानवाधिकार हमारे सामाजिक जीवन की वे अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिनके बिना न तो कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का विकास कर सकता है और न ही समाज हेतु

[1] 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' *मनुस्मृति*, 9/3. स्त्री शूद्रो नाधीयाताम्, अज्ञात.

उपयोगी कार्यों के लिए समर्थ हो सकता है। मानव जीवन के विकास के लिए इतना महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद भी मानवाधिकार विश्व के सभी देशों के संविधानों में मौलिक अधिकार के रूप में नहीं रखा गया है। यद्यपि इनके पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है, तथापि न्यूनाधिक रूप में सभी देशों के प्रशासनिक क्रियाकलाप में इन्हें मूलभूत अवश्य माना गया है। इन मौलिक अधिकारों का ही अपर नाम मानवाधिकार है। ये मौलिक अधिकार प्रजातन्त्र के आधार स्तम्भ माने गए हैं, क्योंकि मानवाधिकारों के द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास की सुरक्षा प्रदान की जाती है, जो प्रजातन्त्र लिए के सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जी.एन. जोशी लिखते हैं कि "एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्रात्मक देश में मूल अधिकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के प्रभावदायक उपभोग के एकमात्र साधन हैं। इन अधिकारों के बिना प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त लागू नहीं हो सकते और सदैव ही बहुमत के अत्याचार का भय बना रहता है।" समाज से जुडी अधिकतर समस्याओं के मूल में मानवाधिकार का हनन ही अन्तर्निहित होता है। जिस समाज में मानवमात्र के अधिकारों की जितनी सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है वह समाज उतना ही स्वस्थ होता है। यही कारण है कि विश्व के प्रायः सभी देशों ने औपचारिक या अनौपचारिक रूप में मानवाधिकार को समुचित स्थान दिया है। 'मानवाधिकार' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रूजवेल्ट ने सन् 1841 ई० में किया था जिसके अन्तर्गत उन्होंने चार मूलभूत स्वतन्त्रताओं की घोषणा की थी क्रमशः 1. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता 2. धर्म की स्वतन्त्रता 3. गरीबी से मुक्ति तथा 4. भय से मुक्ति।[2] आज मानवाधिकार को लेकर सम्पूर्ण विश्व सजग है। विश्व में न्याय और शान्ति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों की मानवीय गरिमा का आदर किया जाएगा। आज मानवाधिकार की अवधारणा को भारतीय दृष्टिकोण के व्यापक फलक पर रखकर देखने की आवश्यकता है। आज आवश्यकता है व्यक्ति को समग्रता के आलोक में देखने की।

मानवाधिकार का अर्थ एवं प्रकृति (Concept and Nature of Human Rights)

मानवाधिकार का यदि शाब्दिक विश्लेषण करें तो यह एक सामासिक पद है। **मानवानां अधिकारः मानवाधिकारः** (षष्ठी तत्पुरुष)। अथवा **मानवेभ्योऽधिकारः मानवाधिकारः**।(चतुर्थी तत्पुरुष)। प्रथम समास में मनुष्यों का अधिकार मानवाधिकार है और द्वितीय में मनुष्यों के लिए विहित

[2] उद्धृत, *मानवाधिकार विधियाँ*. पृ० 2.

अधिकार मानवाधिकार है। यह मानवाधिकार शब्द आङ्गल भाषा के शब्द 'Human Rights' का हिन्दी अनुवाद है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है क्रमशः Human और Rights अर्थात् मानव और अधिकार। मानवाधिकार के सन्दर्भ में मानव को दो दृष्टि से देखा जा सकता है 1. विधीयमान अधिकार जिनको प्राप्त हैं वे मानव हैं अथवा 2. विधीयमान अधिकार उन्हीं को दिए जाएँ जो मानव हैं। इस प्रकार मानव कौन है? जिसके लिए अधिकारों की बात कही जा रही है?

मानव, मनुष्य, व्यक्ति प्रायः समानार्थी हैं। मानव को परिभाषित करने का प्रचलन प्राचीन साहित्य से ही चला आ रहा है। इसकी व्युत्पत्ति दर्शाते हुए विद्वत् जगत् में तीन मत प्रचलित हैं।

1. **मननात् मनुष्यः।** अर्थात् चिन्तन, मनन करने वाला प्राणी मनुष्य है। जो जीव चिन्तन, मननपूर्वक अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है वही मनुष्य या मानव है।
2. **मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्यः।** जो मनन पूर्वक कर्मों का वितान करता है अर्थात् कर्मों में प्रवृत्त होता है, वह मनुष्य है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या मननशील होना मनुष्य का विशेष गुण है, जो अन्य जीवों में नहीं पाया जाता?

3. मनोः अपत्यं पुमानिति मानवः। अर्थात् मनु के अपत्य(सन्तान) को मानव कहा जाता है। इस परिभाषा के आधार पर मनु की सभी सन्तानें जन्मजात मनुष्य हैं। यदि उक्त परिभाषा को सर्वसम्मत मान लिया जाए तो ऋग्वेद के 'मनुर्भव' का विचार सर्वथा अनर्थक सिद्ध हो जाएगा, जिसमें सभी को मनुष्य बनने का आदेश दिया गया है। यदि सभी व्यक्ति जन्मतः ही मनुष्य हैं तो पुनः उनको मनुष्य बनने की क्या आवश्यकता है? अतः मनु का अपत्य होना मात्र मानव का लक्षण है नहीं है, अपत्य होने के साथ-साथ मानवता से विशिष्ट गुणोपेत होने के आधार पर ही व्यक्ति को मानव कहा जाना चाहिए है। प्राचीन साहित्यों में मानवता का विशद् विश्लेषण उपलब्ध होत्ता है। मानवता मनुष्य का धर्म है, इसके अभाव में मनुष्य पशुवत् हो जाता है। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है कि -

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिस्समानः॥[3]

[3] *नीतिशतकम्,* उद्धृत, तिलक, *गीता रहस्य,* पृ० 63.

अर्थात् जिसका आचरण धर्मपूर्वक(मानवता) हो वही मानव कहलाने का अधिकारी है। यद्यपि आचार्यों ने धर्म की विभिन्न परिभाषायें दी हैं तथापि यहाँ धर्म का तात्पर्य कर्त्तव्य से है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने परिवार तथा समाज के प्रति कुछ अनिवार्य कर्त्तव्य होते हैं, जो व्यक्ति इन कर्त्तव्यों का सम्यक् निर्वहन करता है, वही मानव कहलाने का अधिकारी है। कर्त्तव्यों का निर्धारण वेदादि सत्य शास्त्रों के द्वारा किया जाता है। वही व्यक्ति अधिकारों के योग्य है, जो ठीक प्रकार से अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हो। इस प्रकार उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को मिलाकर मानव की एक सटीक परिभाषा दी जा सकती है- मनु का अपत्य होने के साथ-साथ जिसमें मननशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठता तथा मानवता का सम्यक् सन्निवेश हो, वही मानव है।

अधिक्रियते इति अधिकारः। अर्थात् जो अधिकृत हो वह अधिकार है। अधिकार शब्द 'अधि' उपसर्गपूर्वक तथा √कृ धातु से कर्मार्थक 'घञ्' प्रत्यय से सिद्ध होता है, जिसका अर्थ होता है अधीन करना या स्वामित्व होना। इस प्रकार अधिकार शब्द स्वामित्व का बोधक है। 'अधि' उपसर्ग प्रायः अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त होता है तथा √कृ धातु करने के अर्थ को द्योतित करता है तथा 'घञ्' प्रत्यय कर्मार्थक है। इस प्रकार अधिकार शब्द का अर्थ हुआ कर्मीभूत किसी द्रव्य, सत्ता,नियम आदि को अपने में धारण करना अथवा अधीन कर लेना। अधिकार की प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। जिनमें प्राकृतिक अधिकार, माता, पिता, गुरू आदि द्वारा प्रदत्त अधिकार, राजा द्वारा प्रदत्त अधिकार, प्रजा द्वारा राजा को प्रदत्त अधिकार आदि प्रमुख हैं। दोनों शब्द मिलकर मानवाधिकार शब्द का निर्माण करते हैं। सैद्धान्तिक रूप से मानवाधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक है। ये अधिकार किसी देश, काल, परिस्थिति से आबद्ध नहीं होते।

मानवाधिकार की परिभाषा (Definations of Human Rights)

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक वातावरण का स्वस्थ दृष्टिकोण आवश्यक होता है क्योंकि स्वस्थ परिस्थितियाँ व्यक्तित्व के विकास की मुख्याधायिका होती हैं। स्वस्थ परिस्थितियों से तात्पर्य कतिपय मूलभूत अधिकारों की आवश्यकता से है। ये मूलभूत अधिकार वे अधिकार होते हैं, जिनके अभाव में व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है। इनको ही मानवाधिकार कहा जाता है। अतः वे परिस्थितियाँ जो व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में आवश्यक हैं, मानवाधिकार कहे जाते

हैं। ये मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो व्यक्ति को अपने अन्तर्निहित गुणों, सम्मान एवं गरिमा को विकसित करने का अवसर प्रदान करते हैं। इनको मानवाधिकार, मौलिक अधिकार या आधारभूत अधिकार अथवा प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है।

मानवाधिकार एक तरफ तो व्यक्ति की बौद्धिक प्रकृति की माँग है, ताकि वह अपनी योग्यताओं को ठोस रूप दे सके तथा दूसरी तरफ यह समाज द्वारा दी गई रियायत है, जिससे वह अपनी योग्यताओं को कारगर रूप में परिणत कर सके। ये मानवाधिकार गरिमापूर्ण जीवन की वे न्यूनतम दशाएँ हैं, जो समाज के सदस्य अथवा नागरिक होने के कारण समाज अथवा सरकार द्वारा दिए जाते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार का अभिप्राय मानव के उन सभी अधिकारों से है, जो मानव के सम्मान व गरिमा के साथ जीने के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। ये अधिकार नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार के होते हैं। शासक या सरकार की दृष्टि से कुछ अधिकार नकारात्मक होते हैं। नकारात्मक अधिकार वे अधिकार हैं, जो सरकार या शासक पर मनमाने व्यवहार पर अंकुश लगाते हैं। जैसे- सरकार बिना जुर्म के किसी व्यक्ति को उत्पीडित नहीं कर सकती। सकारात्मक अधिकार वे अधिकार हैं, जो सरकार के काम करने के तरीके में सहायक होते हैं। जैसे- समानता, जीवन आदि के अधिकार। ये दोनों प्रकार के अधिकार मानवाधिकार की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार का अभिप्राय मानव के उन सभी अधिकारों से है जो कि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक एवं श्रेष्ठ जीवन यापन और विकास के लिए स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं तथा मानव को सम्मान व गरिमा के साथ जीने के लिए अनिवार्य हैं।

भारतीय संविधान में सभी को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से मानवाधिकार सम्बन्धी सुविधाओं का प्रावधान है। मानवीय जीवन के एक अनिवार्य, अनुलंघनीय तत्त्व एवं मूल्य के रूप में मानवाधिकार की अवधारणा को विभिन्न विचारकों द्वारा व्यक्त विभिन्न दृष्टिकोणों के संदर्भ में समझना होगा, क्योंकि मानवाधिकार का स्वरूप बहु आयामी एवं बहु अर्थी रहा है। इस सन्दर्भ में एकमतता के बावजूद मानवाधिकार के संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे अंतिम रूप से उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किया है, जो हमारी प्रवृति में निहित हैं और जिनके बिना मानवीय जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः मानवाधिकार के सिद्धान्त को दो दृष्टिकोण से देखा जा सकता है-

1. ऐसे अधिकार जो सम्मानपूर्ण जीवन के अस्तित्त्व के लिए आवश्यक हैं।

2. ऐसे अधिकार जो व्यक्तित्त्व के विकास के लिए आवश्यक हैं।

मानवाधिकार का क्षेत्र बहु आयामी है, देश, काल और परिस्थिति के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहता है, इसलिए इसकी कोई एक निश्चित, सर्वसम्मत और सारगर्भित परिभाषा दे पाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी आधुनिक विद्वानों ने मानवाधिकार को तीन दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

1. विधिक आधार (Constitutional Bases)

2. सामाजिक आधार (Social Bases)

3. नैतिक आधार (Athical Bases)

1. विधिक आधार (Constitutional Bases)

भारतीय संविधान के मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, की धारा 2 (1) (घ), विधि के आधार पर मानवाधिकार को मानव अधिकारों को संविधान द्वारा प्रत्याभूत या अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं[4] में सम्मिलित और भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय, व्यक्ति के जीवन, आजादी, समानता और गरिमा से सम्बन्धित अधिकारों के रूप में परिभाषित करती है।[5] श्री निवास शास्त्री कहते हैं कि किसी समुदाय के विधि द्वारा स्वीकृत वह व्यवस्था, रीति या नियम जो नागरिक के सर्वोच्च नैतिक कल्याण में सहायक हो, मानवाधिकार कहलाएगी।[6] बोसांके अधिकार को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि अधिकार वह माँग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।[7] मानवाधिकार की उक्त सभी परिभाषाएँ

[4] धारा 2 (1) (च) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का अर्थ है नागरिक और राजनैतिक अधिकारों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय संविदाएँ तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अङ्गीकृत आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय संविदा और संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अंगीकृत ऐसी अन्य प्रसंविदाएँ/समझौते जिन्हें केन्द्र सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे। *राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत*, पृ० 4.

[5]. *राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत,* पृ० 4.

[6] उद्धृत, डॉ. पुखराज जैन, *राजनीतिक सिद्धान्त*, पृ० 160.

[7] A Right is a claim, recognized by the society and enforced by the state. –Bosannquet उद्धृत, डॉ. पुखराज जैन, *राजनीतिक सिद्धान्त*, पृ० 160.

विधि पर आधारित हैं। विधिमूलक परिभाषाओं के अनुसार सभी मानवाधिकारों का प्रवर्त्तन विधि द्वारा ही प्रभाव में आता है।

2. सामाजिक आधार (Social Bases)

अधिकार को परिभाषित करते हुए हालैण्ड ने कहा है कि व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों के कार्यों को स्वयं अपनी शक्ति से नहीं अपितु समाज के बल पर प्रभावित करने की क्षमता को अधिकार कहते हैं।[8] वाइल्ड ने कुछ विशेष कर्यों को करने के लिए अधिकार को समाज द्वारा स्वाधीनता की माँग के रूप में परिभाषित किया है।[9] हैराल्ड जे. लास्की कहते हैं कि "अधिकार मानव के सामाजिक जीवन की ऐसी शर्तें हैं, जिनके बिना कोई व्यक्ति सामान्यतया अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता।"[10] उक्त तीनों परिभाषाओं में प्रयुक्त अधिकार शब्द मानवाधिकार के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। सुभाष काश्यप ने मानवाधिकार की परिभाषा ऐसे मौलिक अधिकार के रूप में की है, जो विश्व के प्रत्येक भाग में रहने वाले पुरूषों एवं महिलाओं को वहाँ मनुष्य के रूप में जन्म लेने से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार सभी मनुष्यों का जन्मसिद्ध अधिकार है। प्रो. हाब हाउस कहते हैं कि "मानवाधिकार वह है, जिसमें हम दूसरों से कुछ आशाएँ करते हैं तथा दूसरे भी हमसे कुछ आशाएँ करते हैं। इस आशा के वातावरण में सभी सार्थक अधिकार समाज कल्याण की शर्तें होती हैं। अतः मानवाधिकार वह है, जिसका दावा प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक कार्यों की पूर्ति के लिए करता है। ऐसे दावों की समाज आशा करता है।"[11] इस प्रकार अधिकार किसी व्यक्ति के वे दावे हैं, जो समाज में दूसरे व्यक्तियों द्वारा स्वीकार्य हैं।

3. नैतिक आधार (Athical Bases)

थामसन जैफरन ने अधिकार के विषय में लिखा है कि स्वभावतया सभी मनुष्य समान रूप से उन्मुक्त तथा स्वाधीन हैं और उनके कुछ जन्मजात अधिकार हैं, जिन्हें मनुष्य स्वयं अपने जीवन अथवा

---

[8] A right is one man's capacity of influencing the act of other's not by his own strength but by the strength of the society., Holland. उद्धृत, डॉ. शिव भानु सिंह, *समाज दर्शन का सर्वेक्षण*, पृ. 240.

[9] A right is a reasonable clim to freedom in the exercise of certain activities., Wide, उद्धृत, वही।

[10] उद्धृत, डॉ. शिवदत्त शर्मा, *मानव अधिकार*, पृ०19.

[11] गोकुलेश शर्मा, *Human rights and social justis,* 1997, पृ० 1.

अपनी सन्तानों से पृथक नहीं कर सकते। यथा- जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकारों का उपयोग, सम्पत्ति के अर्जन और सुखी जीवन के साधन का अधिकार आदि।[12] मैकफरलेन कहते हैं कि मानवाधिकार वे नैतिक अधिकार हैं, जो प्रत्येक पुरुष अथवा स्त्री को केवल मानव होने के आधार पर मिलते हैं। इन्होंने मानवाधिकार के पाँच विशेषताओं का वर्णन किया है- 1. सर्वव्यापकता (Universality) 2. व्यक्तिपरकता (Individuality) 3. सर्वोच्चता (Paramountcy) 4. व्यावहारिकता (Practicability) तथा 5.कार्यान्वयन (Enforceability)।[13] मानवाधिकार में उक्त पाँचों विशेषताओं का सन्निवेश अनिवार्य है। इस प्रकार नैतिक विकास की सभी आवश्यक दशाओं को मानवाधिकार की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। आर.सी वरमानी ने भी मानवाधिकार सम्बन्धी चार तथ्यों की ओर संकेत किया है[14]-

1. मानवाधिकार व्यक्ति के जन्मजात हैं, वे उसके व्यक्तित्व में अन्तर्निहित हैं।
2. ये मूलभूत मानवीय जीवन तथा उसके विकास के लिए आवश्यक हैं।
3. ये उन सामाजिक परिस्थितियों की अपेक्षा करते हैं जिनमें इन्हें प्राप्त किया जा सके।
4. इन्हें व्यक्ति की मौलिक माँगें मानते हुए प्रत्येक राज्य को अपने संविधान और नियमों का भाग बनाना चाहिए।

मानवाधिकार विषयक प्राचीन भारतीय मत (Ancient Indian Theory of Human Rights)

भारतीय संस्कृति में मानवाधिकारों का स्पष्ट विश्लेषण प्रायः धर्म शब्द के अन्तर्गत किया गया है। इसमें धर्म को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। धर्म का विवेचन आगे किया जाएगा। वेदों के सन्दर्भ में यदि हम मानवाधिकार की बात करें तो प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में "**मनुर्भव**"[15] तथा

---

[12] "We hold these truths to be self-evident that men created equal, That they are endowed by their creator with creation inalienable rights that among these are life, liberty and pursuit of happiness." Thomas Jefferson

[13] आर. सी. वरमानी, *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन*, पृ० 164.

[14] वही, पृ० 166.

[15] *ऋग्वेद,* 10/52/6.

"**पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ।**"[16] कहा गया है। अर्थात् सभी मनुष्य बनें तथा एक-दूसरे की रक्षा के दायित्व का निर्वहन करें। यजुर्वेद में कहा गया है कि-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। [17]

अर्थात् सभी प्राणी हमें मित्र की दृष्टि से देखें और हम भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखें। इस प्रकार इस संसार में जितने भी प्राणी हैं, सभी से मित्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए तथा समय आने पर एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए।[18] सभी मनुष्यों को परस्पर उसी प्रकार प्रेम करना चाहिए, जिस प्रकार गौ सद्यः जात अपने बछडे से करती है।[19] मानवता को स्पष्ट करते हुए *पद्मपुराण* तथा *महाभारत* में कहा गया है कि-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।। [20]

प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो उसे अपने लिए अपेक्षित न हो। यह मानवाधिकार की सर्वतोपयुक्त परिभाषा है। सुख, सम्मान, प्रेम आदि सभी को प्रिय होते हैं, अतः अन्यों के भी सुख, सम्मान का ध्यान रखना चाहिए। सुख की कामना करने वाले मनुष्य को दूसरों के साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए।[21] अर्थात् जिस व्यवहार से स्वयं को कष्ट होता हो वैसा व्यवहार दूसरों से नहीं करना चाहिए। द्वेष आदि सभी को अप्रिय होते हैं, अतः कोई मनुष्य किसी भी मनुष्य से द्वेष न करे[22], अपितु सभी परस्पर प्रेम पूर्वक व्यवहार करें।[23] इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष की विस्तृत व्याख्या है।

---

[16] *ऋग्वेद,* 6/75/14.

[17] *शुक्लयजुर्वेद,* 36/18

[18] न स सखा यो न ददाति सख्ये । *ऋग्वेद,* 10/117

[19] अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ *अथर्ववेद,* 3/30/1

[20] *पद्मपुराण,* सृष्टि 19/357-358. *महाभारत,* 5/15/17

[21] यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः॥ *यजुर्वेद,* 40/7

[22] मा नो द्विक्षत कश्चन। *अथर्ववेद,* 12/9/19.

[23] प्रियं सर्वस्व पश्यत उत शूद्र उतार्ये । *वही,* 19 /62 /1.

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं, उनकी जाति, राष्ट्रीयता या किसी विशेष सामाजिक समूह की सदस्यता के आधार पर नहीं। ये अधिकार मानवीय गरिमा और उपयुक्त जीवन स्तर की न्यूनतम शर्तों को व्यक्त करते हैं। ये न तो अर्जित किए जा सकते हैं, न ही वंशानुगत होते हैं और न ही किसी समझौते के माध्यम से निर्मित किए जा सकते हैं। दूसरी तरह से मानवाधिकार की परिभाषा सभी पुरूष एवं महिलाओं के परस्पर सम्बन्धों तथा व्यक्ति एवं राज्य के परस्पर सम्बन्धों के संदर्भ में भी की जाती है। क्योंकि व्यक्ति के परस्पर व्यवहार को भी राज्य नियन्त्रित करता है और राज्य के प्रति जो वे व्यवहार करते हैं, उसी आधार पर राज्य बदले में उनके मानवाधिकार को संरक्षण प्रदान करता है। बेनेट ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि "व्यक्ति के मानवाधिकार का प्रश्न व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों तथा व्यक्ति एवं सरकारी प्राधिकारों, स्थानीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक के सह सम्बन्धों के साथ सम्बद्ध है। मानवाधिकार में व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्वतन्त्रता के वे क्षेत्र शामिल हैं, जो सरकारी हस्तक्षेप से या तो मुक्त हैं क्योंकि व्यक्ति की गरिमा एवं कल्याण के साथ उनका सरोकार है, अथवा वे उनकी गारन्टी, संरक्षण एवं प्रोत्साहन के सशक्त माध्यम हैं।" अतः मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है, जो व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। जीवन की वे दशाएँ जो मानव को विधिसम्मत कार्यों के सम्पादन की पूर्ण स्वतन्त्रता देती हों, मानवाधिकार कहलाती हैं। एक-दूसरे के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार का पालन तथा दूसरे से उसी प्रकार के व्यवहार की आकांक्षा भी मानवाधिकार है। समाज में सभी व्यक्तियों का एक-दूसरे के प्रति कुछ अधिकार और कुछ कर्त्तव्य होते हैं, जिनका सम्यक् निर्वहन होने से समाज में समरसता बनी रहती है। जहाँ भी इनके अनुपालन में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होता है, वहीं अनेकों समस्याएँ उद्भूत होने लगती हैं।

मानवाधिकारों का वर्गीकरण (Classification of Human Rights)

अधिकार सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं- 1. सामान्याधिकार और 2. विशेषाधिकार।

सामान्य अधिकार वे अधिकार हैं, जो सभी को मनुष्य होने के कारण प्राप्त होते हैं। इनको ही मौलिक अधिकार कहा जाता है । विशेषाधिकारों के अन्तर्गत कर्त्तव्य, पदादि के आधार पर आवश्यक अधिकारों का दायित्व दिया जाता है। मानवाधिकार शब्द प्रायः मौलिक अधिकारों के लिए ही प्रयुक्त

होता है। इसलिए अधिकतर विद्वानों नें मानवाधिकार को मौलिक अधिकारों के रूप में ही परिभाषित करने का प्रयास किया है। शिव भानु सिंह ने अधिकारों का वर्गीकरण भिन्न प्रकार से किया है। उनका मानना है कि अधिकार दो प्रकार के होते हैं 1. नैतिक अधिकार और 2. कानूनी अधिकार।

नैतिक अधिकार (Athical Rights)

नैतिक अधिकार वे अधिकार हैं, जिनका सम्बन्ध मानव के नैतिक उत्कर्ष से होता है। वैश्विक जगत् के प्रत्येक मनुष्य को नैतिक रूप से उन्नत दशा को प्राप्त होने का अधिकार है। ये अधिकार राज्य द्वारा संरक्षित नहीं किए जाते। नैतिक रूप से उन्नत होने का अधिकार मनुष्यों के व्यैयक्तिक अधिकार के अन्तर्गत आता है। सभी समाज का एक नैतिक मापदण्ड होता है। उसी के आधार पर व्यक्ति का उत्थान और पतन सुनिश्चित होता है। यदि व्यक्ति उससे उन्नत दिशा में आगे बढ़ता है तो समाज का सम्मानित सदस्य बनता है और यदि वह अधोगति को जाता है तो समाज द्वारा निन्दित होता है। अधोगामी होने से किसी न किसी के अधिकारों का हनन सुनिश्चित है, ऐसे समय में राज्य हस्तक्षेप करता है।

कानूनी अधिकार (Constitutional Rights)

कानूनी अधिकार वे अधिकार हैं, जिनकी व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती है। इन अधिकारों को राज्य द्वारा पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता है। कानूनी अधिकार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-

(क). सामाजिक अधिकार (Social Rights) और (ख). राजनीतिक अधिकार (Polotical Rights)

(क) **सामाजिक अधिकार** के अन्तर्गत जीवन का अधिकार, समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार आदि विभिन्न प्रकार के समाज सम्बन्धी अधिकार आते हैं।

(ख) **राजनीतिक अधिकारों** में निर्वाचन का अधिकार, निर्वाचित होने का अधिकार, पद ग्रहण करने का अधिकार आदि अन्तर्निहित हैं।

प्रत्येक राज्य का यह मौलिक कर्त्तव्य होता है कि सभी नागरिकों के कानूनी अधिकारों की रक्षा करे। अधिकारों का उपर्युक्त वर्गीकरण समीचीन प्रतीत होता है। उक्त वर्गीकरण में मानवाधिकार के प्रायः सभी पक्ष समाहित हो जाते हैं।

सार्वभौमिक घोषणापत्र में मानवाधिकार (Universal Declaration of Human Rights)

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में 10 दिसंबर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणापत्र का निर्माण हुआ। जिसमें मानवाधिकार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि सब मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र हैं, सबकी प्रतिष्ठा तथा अधिकार समान हैं तथा उन्हें घोषणा में निहित सारे अधिकार और उनकी स्वतन्त्रताएँ जाति, रङ्ग, लिङ्ग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार, सम्पत्ति, जन्मस्थान या स्थिति के आधार पर बिना किसी भेदभाव किए पाने का अधिकार है।[24] मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा ने भेदभाव को न करने के सिद्धान्त की पुष्टि की थी और घोषित किया था कि सभी मानव स्वतन्त्र पैदा हुए हैं और गरिमा एवं अधिकारों में समान हैं तथा सभी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के, जिसमें लिङ्ग पर आधारित भेदभाव भी शामिल है, सभी अधिकारों एवं स्वतन्त्रता के अधिकारी हैं। घोषणापत्रोक्त सभी अधिकार विश्व के सभी मनुष्यों को समान रूप से प्राप्त हैं, चाहे वह किसी भी देश या जाति का हो। यदि दूसरे देश में किसी भी मनुष्य के साथ बर्बरता-पूर्वक व्यवहार किया जाता है तो वह इस घोषणपत्र के अधार पर UNO (United Nations Organization) के समक्ष न्याय की माँग कर सकता है। मानवाधिकार की अंतर्राष्ट्रीय घोषणा के तहत निम्न अधिकार समाहित हैं[25]-

अनुच्छेद 1 प्रतिष्ठा और अधिकारों की दृष्टि से सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान रूप से जन्म लेते हैं। वे तर्क और विवेक के साथ संपन्न होते हैं। इसलिए भ्रातृत्व की भावना से समुद्भूत होकर परस्पर व्यवहार करें।

[24] http://manavadhikar.co.in/welcometo_humanrights.php

[25] वही .

अनुच्छेद 2 जाति, वर्ण, लिङ्ग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थिति सम्बन्धी किसी भी भेदभाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में सन्निहित समस्त अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को प्राप्त करने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति जिस किसी भी देश या राज्यक्षेत्र का रहने वाला हो, उसका उसके देश के राजनीतिक अथवा अधिकारक्षेत्रिय या उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा, चाहे वह देश स्वाधीन, पराधीन, न्यासाधीन अथवा प्रभुसत्ता के किसी अन्य प्रतिबन्ध के अधीन आता हो।

अनुच्छेद 3 प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4 किसी भी व्यक्ति को परतन्त्रता या बेरोजगारी की स्थिति में नहीं रखा जाएगा, दासता और मनुष्यों का क्रय-विक्रय सभी प्रकार से प्रतिबन्धित होगा।

अनुच्छेद 5 किसी को भी शारीरिक यातना या उसके साथ क्रूर, अमानवीय अथवा अपमानजनक बर्ताव नहीं किया जाएगा और न ही किसी को अमानवीय तरीके से दण्ड दिया जाएगा।

अनुच्छेद 6 विधि की दृष्टि में सभी व्यक्ति को सर्वत्र व्यक्ति के रूप में पहचाने जाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 7 विधि की दृष्टि में सभी बराबर हैं। सभी को किसी भी प्रकार के भेदभाव बिना विधि का संरक्षण प्राप्त है।

अनुच्छेद 8 संविधान या विधि द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरण से प्रभावी समाधान प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 9 किसी भी व्यक्ति को मनमाने तरीके से बन्धक नहीं बनाया जा सकता और न ही देश निकाला दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 10 प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से पूर्ण अधिकार है कि उसके अधिकारों और कर्त्तव्यों को निश्चित करने के सम्बन्ध में और उस पर आरोपित न्यायाधीन किसी मामले में उसकी सुनवाई न्यायोचित एवं सार्वजनिक रूप से स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष न्यायालय द्वारा की जाए।

अनुच्छेद 11 यदि कोई व्यक्ति दण्डनीय अपराध से आरोपित किया गया है तो उसको तब तक निर्दोष माने जाने का अधिकार होगा जब तक उसे अपनी सफाई पेश करने की सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी सार्वजनिक सुनवाई के बाद अदालत द्वारा उसे दोषी न सिद्ध कर दिया जाए।

अनुच्छेद 12 किसी भी व्यक्ति के परिवार, उसके घर या पत्र व्यवहार की एकान्तता के साथ मनमाने ढंग से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और न ही उसके सम्मान तथा प्रतिष्ठा पर आक्षेप किया जाएगा। इस प्रकार के हस्तक्षेप या हमलों के विरुद्ध व्यक्ति को कानूनी बचाव का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13 i. प्रत्येक व्यक्ति को हर राज्य की सीमाओं के अन्दर आवागमन और आवास की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को अपने सहित किसी भी देश को छोड़ने तथा अपने देश वापस लौटने की स्वतन्त्रता है।

अनुच्छेद 14 i. उत्पीड़ित किए जाने की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को अन्य देशों में शरण लेने का अधिकार है।

ii. इस अधिकार का सहयोग विशुद्धतया राजनीतिभिन्न अपराधों या संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध किए गए कृत्यों से उत्पन्न अभियोग के सम्बन्ध में नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 15 i. प्रत्येक व्यक्ति को एक राष्ट्रियता का अधिकार है।

ii. मनमाने ढंग से किसी भी व्यक्ति की राष्ट्रियता को खारिज नहीं किया जा सकता और न ही उसे राष्ट्रियता बदलने के अधिकार से वञ्चित किया जा सकता है।

अनुच्छेद 16 i. वयस्क पुरूषों और स्त्रियों को जाति, राष्ट्रियता या धर्म के आधार पर बिना किसी रुकावट के आपस में विवाह करने और परिवार बनाने का अधिकार है। विवाह के सम्बन्ध में उन्हें विवाह के दौरान अथवा बाद में विवाह को भङ्ग करने का पूर्ण अधिकार है।

ii. विवाह केवल अभिलाषी युवक और युवती की स्वतन्त्र और पूर्ण सहमति पर ही किया जा सकता है।

iii. परिवार समाज की स्वाभाविक एवं बुनियादी इकाई है। अत एव उसे समाज तथा राज्य से संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 17 i.प्रत्येक व्यक्ति को अकेले तथा अन्यों के साथ मिलकर संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार है।

ii. किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से उसकी संपत्ति के स्वामित्व से वञ्चित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 18 प्रत्येक व्यक्ति को विचार, सोच और धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इस अधिकार में अपना धर्म या मत बदलने की स्वतन्त्रता और अकेले या समुदाय में अन्य लोगों के साथ सामूहिक रूप से तथा निजी या सार्वजनिक रूप से उपदेश, आचरण, उपासना और अनुपालन द्वारा अपने धर्म या मत को मानने की स्वतन्त्रता सन्निहित है।

अनुच्छेद 19 प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी विचार को अपनाने और उसे व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र होने का अधिकार है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के कोई भी मत अपनाने तथा बिना किन्हीं सीमाओं के सूचना और विचार ग्रहण करने, खोजने और प्रचारित करने की स्वतन्त्रता सम्मिलित है।

अनुच्छेद 20 i. प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्ण ढंग से सभा आयोजित करने तथा संघबद्ध होने की स्वतन्त्रता का अधिकार है।

ii. किसी को भी संघविशेष का सदस्य बनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21 i. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में, प्रत्यक्ष या स्वतन्त्र रूप से चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से भाग लेने का अधिकार है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की लोक सेवा में समानता के आधार पर प्रवेश करने का अधिकार है।

iii. सरकार की सत्ता जनता की इच्छा पर ही निर्भर होगी। जनता की इच्छा का प्रकटन नियतकालिक एवं यथार्थ रूप से वास्तविक चुनावों में होगा जो सार्वजनिक तथा समान मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान या इसी के समान किसी अन्य स्वतन्त्र मतदान प्रक्रिया से कराए जाएँगे।

अनुच्छेद 22 समाज के सदस्य होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा पाने का अधिकार है और वह राष्ट्रीय प्रयासों एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से तथा प्रत्येक राज्य के संगठन और

संसाधनों के अनुरूप अपनी प्रतिष्ठा तथा अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास के लिए अपरिहार्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का पात्र है।

अनुच्छेद 23 i. प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने, न्यायोचित तथा अनुकूल परिस्थितियों में काम करने एवं बेरोजगारी से संरक्षण पाने का अधिकार है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के समान काम करने के लिए समान वेतन का अधिकार है।

iii. काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इतना न्यायोचित एवं अनुकूल पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार है, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि वह अपने तथा अपने परिवार के लिए मानवीय प्रतिष्ठा के अनुरूप आजीविका की व्यवस्था कर सकेगा।

vi. प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उसमें सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है।

अनुच्छेद 24 प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम करने का अधिकार है, जिसमें कार्यावधि, या काम के घंटों, की यथोचित सीमा तथा नियतकालिक सवेतन अवकाश शामिल है।

अनुच्छेद 25 i. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है, जो उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए उपयुक्त हो, जिसमें खाद्य, परिधान, आवास, चिकित्सा-व्यवस्था, आवश्यक सामाजिक सेवाएँ और बेरोजगारी, बीमारी, अपङ्गता, वैधव्य, वृद्धावस्था या अपने अक्षम परिस्थितियों में आजीविका के साधन लुप्त हो जाने की स्थिति में संरक्षण के अधिकार सम्मिलित हैं।

ii. जच्चा और बच्चा विशेष देखभाल तथा सहायता के अधिकारी हैं। सभी बच्चों को, चाहे वे विवाहिता से उत्पन्न हुए हों या अविवाहिता से, उन्हें समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होंगे।

अनुच्छेद 26 i. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। कम से कम प्रारम्भिक और बुनियादी चरणों में शिक्षा निःशुल्क होगी तथा प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्य तौर पर उपलब्ध रहेगी तथा उच्चतर शिक्षा योग्यता के आधार पर सबके लिए सुलभ्य होगी।

ii. शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास तथा मानवाधिकारों और बुनियादी स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को सुदृढ़ करना होगा। यह सभी राष्ट्रों एवं धार्मिक संगठनों के बीच सद्भावना को प्रवर्तित तथा परिवर्धित करेगी और शान्ति बनाए रखने सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों को बढ़वा देगी।

iii. अपने बच्चों को किस तरह की शिक्षा दिलानी है इसके निश्चय का अधिकार अभिभावकों का होगा।

अनुच्छेद 27 i. प्रत्येक व्यक्ति को मुक्त रूप से समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने, कलाओं का आनन्द उठाने और इसके वैज्ञानिक उन्नयन तथा उससे हुए लाभों का उपभोग करने का समान अधिकार है।

ii. प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से सम्बद्ध नैतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है, जिसकी रचना उसने स्वयं की हो।

अनुच्छेद 28 प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को पूर्णरूप से प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29 i. प्रत्येक व्यक्ति का उस समुदाय के प्रति दायित्व है, जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और पूर्ण विकास सम्भव हो सकता है।

ii. अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का प्रयोग करते हुए एक व्यक्ति विधि द्वारा निर्धारित उन सीमाओं से बँधा रहेगा, जिनका एकमात्र उद्देश्य अन्यों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को उचित पहचान और मान्यता देना तथा नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सर्वसाधारण के कल्याण की न्यायसङ्गत आवश्यकताओं को पूरा करना है।

iii. इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का उपयोग किसी भी स्थिति में संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30 इस घोषणा के किसी भी अंश का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि किसी देश, सङ्गठन या व्यक्ति को इसमें प्रदत्त किसी भी अधिकार या स्वतन्त्रता को समाप्त करने के उद्देश्य से कोई भी कार्य करने का अधिकार मिल जाता है।

इस प्रकार उक्त घोषणापत्र में वाक् स्वातन्त्र्य का अधिकार, न्यायिक उपचार का अधिकार सरकार (किसी देश में) की भागीदारी का अधिकार, काम का अधिकार, स्तरीय जीवन जीने का अधिकार, आराम एवं सुविधापूर्ण जीवन जीने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, वैज्ञानिक प्रगति में भाग एवं उससे लाभ लेने का अधिकार, जीवन, सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता का अधिकार, मनमाने ढंग से बन्दी अथवा निर्वासन के विरुद्ध अधिकार, विचार, विवेक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्यायिक सुनवाई का अधिकार, शान्तिपूर्ण सभा संगोष्ठी करने तथा संघ बनाने के अधिकार सम्मिलित है। मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के समर्थन में भारत समेत विश्व के सैंतालीस देशों ने अपनी स्वीकृति प्रदान की। इस घोषणापत्र पर जिन्होंने अस्वीकृति प्रकट की उनमें से अधिकतर इस्लामिक राष्ट्र थे, जिन्होंने उक्त घोषणापत्र को शरीयत विरोधी बताकर इसको अस्वीकार किया।

भारतीय संविधान में मानवाधिकार (Human Rights in The Constitution of India)

जिस समय सार्वजनिक घोषणापत्र पर विचार किया जा रहा था, उसी समय भारतीय संविधान अपने अस्तित्त्व में आ रहा था। इसलिए घोषणापत्र का प्रभाव भारतीय संविधान पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। स्वतन्त्र भारत का संविधान प्रत्येक नागरिक के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का वचन देता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार दिया गया है, जिसके तहत प्रत्येक मनुष्य को गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के साथ मजदूरों (स्त्री एवं पुरूष) के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों के शोषण के विरुद्ध संरक्षण के साथ बच्चों को स्वस्थ रूप से विकसित होने के साथ-साथ, स्वतन्त्रता एवं गरिमा का माहौल बनाए रखना, समान शिक्षा का अवसर प्रदान करना तथा मातृत्व सुविधा प्रदान करने के लिए न्यायपूर्ण एवं मानवोचित परिवेश बनाने जैसी कुछ न्यूनतम आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं। भारतीय संविधान में मानवाधिकारों के रूप में मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। मूल अधिकारों को सामान्यतः छः भागों में विभक्त किया गया है-

1. समानता का अधिकार (Right to Equality) (अनुच्छेद 14-18)

2. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom) (अनुच्छेद 19-22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation) (अनुच्छेद 23-24)
4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion) (अनुच्छेद 25-28)
5. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights) (अनुच्छेद 29-30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies) (अनुच्छेद 31-32)

1. समानता का अधिकार (Right to Equality)

यह अधिकार समाज द्वारा उत्पन्न की गई विभिन्न अवाञ्छित विषमताओं से व्यक्ति की रक्षा है। इसके अन्तर्गत कहा गया है कि विधि के समक्ष सभी व्यक्ति समान हैं। विधि समान रूप से सभी के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करेगा। न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ तथा न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने कहा है कि "समानता एक गतिशील संकल्पना है, जिसके कई पहलू तथा आयाम हैं और इसे पारम्परिक तथा अव्यावहारिक सीमाओं के भीतर बन्द, ठूसा और सीमित नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण से, समानता निरंकुशता के प्रतिकूल है। वास्तव में समानता और निरंकुशता एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हैं।"[26] इस प्रकार समानता का अधिकार स्वेच्छाचरण पर अंकुश लगाता है और धर्म, जाति, लिङ्ग, मूलवंश, जन्म-स्थान आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का प्रतिषेध करता है। लॉस्की समानता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "समानता मूल रूप में समानीकरण की एक प्रक्रिया है, इसलिए प्रथमतः समानता का आशय विशेषाधिकारों के अभाव से है। द्वितीय रूप में इसका आशय यह है कि सभी व्यक्तियों को विकास हेतु पर्याप्त अवसर प्राप्त होने चाहिए।"[27] अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से या विधियों के समान संरक्षण से वञ्चित नहीं करेगा। समानता के अधिकार को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

---

[26] ई.वी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य, A.I.R. 1974 S.C. 555, उद्धृत, सुभाष काश्यप, *हमारा संविधान,* पृ० 84.

[27] Equality implies fundamentally a certain levelling process. Equality, therefor means, first of oll the absence of special privilege. Equality means in the second place, that adequate opportunities are laid open to all. , H.S. Laski, *Grammer of politics*, पृ० 153-54.

1. सामाजिक समानता।

2. राजनीतिक समानता।

3. आर्थिक समानता।

1. सामाजिक समानता के अन्तर्गत लिङ्ग, जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव, छुआछूत आदि का अन्त अन्तर्निहित है।

2. राजनीतिक समानता में समाज के सभी व्यक्ति को समान रूप से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का समान अवसर उपलब्ध कराया जाता है।

3. आर्थिक समानता का तात्पर्य है कि व्यक्तियों की आय में बहुत अधिक असमानता या अन्तर का न होना है। सभी प्रकार की समानताओं में आर्थिक समानता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। डॉ. शिव भानु सिंह कहते हैं कि आर्थिक समानता के अभाव में राजनीतिक और सामाजिक समानताएँ निरर्थक हैं।[28] भारतीय संविधान के पाँच अनुच्छेदों में समानता को स्पष्ट किया गया है।

4. अनुच्छेद 14 भारत राज्य की सीमा में राज्य द्वारा किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से वञ्चित नहीं किया जाएगा।

5. अनुच्छेद 15(1) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति, मूलवंश, लिङ्ग, जन्मस्थान आदि के आधार पर कोई भेद नहीं करेगा। अनुच्छेद 15(2) (क) के अनुसार सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश का सबको अधिकार है। अनुच्छेद 15(2) (ख) में सार्वजनिक उपयोग स्थलों जैसे- कूओं, तालाबों पर सबका समान अधिकार है। अनुच्छेद 15(3) और (15)(4) में कहा गया है कि राज्य बालकों, स्त्रियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष उपबन्ध करने से मना नहीं करेगा।[29]

6. अनुच्छेद 16(1) राज्याधीन पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी नागरिकों की समान भागीदारी होगी। अनुच्छेद 16(2) में लिङ्ग, जाति आदि के आधार पर पदों की नियुक्ति में असमानता का अन्त।

---

[28] डॉ. शिव भानु सिंह, *समाज दर्शन का सर्वेक्षण*, पृ० 261.

[29] डॉ. शिवदत्त शर्मा, *मानव अधिकार*, पृ० 85.

अनुच्छेद 16(3) में संसद को राज्य क्षेत्र में निवास विषयक तथ्य को जानने की शक्ति प्रदान की गई है। अनुच्छेद 16(4) पिछडों के लिए आरक्षण का प्रावधान है।

7. अनुच्छेद 17 राज्य किसी भी प्रकार की अस्पृश्यता का अन्त करता है।

8. अनुच्छेद 18 इसके अन्तर्गत सेना और विद्या के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के उपाधियों का अन्त कर दिया गया।

इस प्रकार भारतीय संविधान में समानता से सम्बन्धित सभी अनुच्छेदों का सारांश यही है कि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के साथ अधिकारों और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में एक-सा व्यवहार किया जाएगा।

2. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)

स्वतन्त्रता का अधिकार मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक अधिकारों में से एक है। स्वतन्त्रता को स्पष्ट करते हुए आधुनिक विचारक बर्टेन्ड रसेल कहते हैं कि "स्वतन्त्रता की इच्छा व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और इसी के आधार पर सामाजिक जीवन का निर्माण सम्भव है। मनुष्य का सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक, एवं नैतिक विकास स्वतन्त्रता के वातावरण में ही सम्भव है।"[30] डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि स्वतन्त्रता किसी अन्य साध्य की प्राप्ति का साधन नहीं, वरन् यह सर्वोच्च साध्य है।[31] स्वतन्त्रता को परिभाषित करते हुए 1789 के मानवाधिकार घोषणा में कहा गया है कि स्वतन्त्रता वह सब कुछ करने की शक्ति का नाम है जिससे दूसरे व्यक्तियों को आघात न पहुँचे।[32] स्वतन्त्रता को स्पष्ट करते हुए रूजवेल्ट ने कहा था कि स्वातन्त्र्य से हर जगह मानव अधिकारों की सर्वोच्चता ही अभिप्रेत है। हमारा समर्थन उन्हीं को है, जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं।[33] प्रो. जे. लास्की ने कहा है कि "स्वतन्त्रता से मेरा अभिप्राय यह है कि उन सामाजिक परिस्थितियों पर प्रतिबन्ध न हो, जो आधुनिक सभ्यता में मनुष्य के सुख के लिए नितान्त

[30] डॉ. शिव भानु सिंह, *समाज दर्शन का सर्वेक्षण*, पृ० 254.

[31] वही, पृ० 254.

[32] वही, पृ० 254.

[33] वही, पृ० 254.

आवश्यक है।"[34] अतः स्वतन्त्रता की सीमा वहीं तक होनी चाहिए जहाँ तक किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र का अहित न होता हो। लॉस्की ने स्वतन्त्रता के तीन रूप माने हैं[35]-

1. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अन्तर्गत व्यक्ति अपने इच्छानुसार जीवन जीने की शैली तथा धर्म आदि का चुनाव कर सकता है।

2. राजनीतिक स्वतन्त्रता में व्यक्ति राजनीतिक मामले में सक्रिय तथा स्वेच्छानुसार मत व्यक्त कर सकता है।

3. आर्थिक स्वतन्त्रता को लॉस्की ने सबसे अधिक महत्त्व दिया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने योग्यतानुसार व्यवसाय चुनने का समान अवसर, आर्थिक सुरक्षा तथा उद्योग में लोकतन्त्र का समावेश सुनिश्चित किया जाता है।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, इसलिए किसी की भी स्वतन्त्रता वहीं तक सम्भव है, जहाँ तक किसी अन्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन न होता हो। यदि स्वतन्त्रता की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई तो स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता में भेद कर पाना कठिन हो जाएगा। यह एक ऐसा अधिकार है, जिसको यदि ठीक से निर्धारित नहीं किया जाए तो यह समाज में अनिश्चितता उत्पन्न कर सकता है। विचारकों ने स्वतन्त्रता को सकारात्मक और नकारात्मक दो दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया है। इसलिए भारतीय संविधान स्वतन्त्रता को लेकर निम्न बिन्दुओं को सुनिश्चित करता है।–

1. भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19(1)(क))
2. बिना हथियारों के शान्तिपूर्ण सम्मेलन की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19(1)(ख))
3. संगठन बनाने की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19(1)(ग))
4. भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र निर्बाध संचरण की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19(1)(घ))
5. भारत के नागरिकों को भारत क्षेत्र के किसी भी राज्य में निवास की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19 (1) (ङ))

---

[34] Liberty is the absence of ristraints upon the existence of those social conditions, which in modern civilization are the necessary guarantees of individual happiness., Laski उद्धृत, वही, पृ०255.

[35] उद्धृत, डॉ. शिव भानु सिंह, *समाज दर्शन का सर्वेक्षण*, पृ० 256.

6. आजीविका या व्यापार की स्वतन्त्रता (अनुच्छेद 19(1)(छ))

अनुच्छेद 20 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं माना जाएगा जब तक उसका दोष सिद्ध नहीं हो जाता और किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक बार ही दण्ड दिया जाएगा।

अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वञ्चित किया जा सकता है अन्यथा नहीं। अतः सामान्य व्यक्ति को जीवन का अधिकार है ।

अनुच्छेद 20 में गिरफ्तारी से सम्बन्धित अधिकारों का वर्णन है। बिना कारण बताए किसी को मनमाने तरीके से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

मानवाधिकारों में महत्ता की दृष्टि से समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में इनका सर्वाधिक योगदान होता है।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

शोषण का तात्पर्य किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध बरबस अनैतिक तरीके से किसी भी कार्य के लिए बाध्य करना शोषण कहलाएगा। इस प्रकार किसी व्यक्ति के इच्छा के विरुद्ध उससे किसी प्रकार कार्य हेतु दबाव बनाना, कार्य करवाना तथा किसी प्रकार की बलात्कार करना शोषण के अन्तर्गत आएगा। शोषण के विरोध का अधिकार उसके शोषण से मुक्ति के लिए है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के विकास में शोषण एक बड़ी बाधा बनकर उभरता है। यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी प्रकार को शोषण से रक्षा करता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद (23) में मानव का दुर्व्यापार और इस प्रकार के अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किए गए हैं तथा अनुच्छेद (24) के अनुसार कारखानों आदि में बालकों के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

धर्म का प्रचलन प्राचीन काल से ही भारतीय जनजीवन में व्याप्त रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में धर्म इतना प्रभावशाली था कि राजा, प्रजा सभी धर्माधीन होकर जीवन-यापन करते थे। इस प्रकार धर्म ही सबका शासक था। आधुनिक समय में भी धर्म को भारतीय संस्कृति का आधार माना जाता है।

सम्पूर्ण भारतीय समाज धर्म पर आधारित है। भारतीय साहित्य में धर्म पर अत्यन्त गूढ़ता-पूर्वक विचार किया गया है। धर्म शब्द 'धृधारणे' धातु से बनता है। इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि –**धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥**[36] अर्थात् जो प्रजा को धारण करता है वह धर्म है। धारण करने के कारण ही उसका नाम धर्म है। धारण करने का तात्पर्य अधिकारों और कर्त्तव्यों से है। भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा पूर्णतः अधिकारों और कर्त्तव्यों में समाहित है। इस प्रकार अधिकार और कर्त्तव्य का सामूहिक नाम धर्म है। धर्म के विषय में वैशेषिक दर्शन के प्रणेता आचार्य कणाद कहते हैं कि "**यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।**"[37] अर्थात् जिससे लौकिक जीवन का उत्थान तथा पारलौकिक जीवन का कल्याण सम्भव हो वही व्यवहार धारण करना चाहिए। सबको अपने जीवन को समुन्नत बनाने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। मनु ने धर्म के दस लक्षण गिनाए हैं-

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।[38]

आधुनिक विचारकों ने सकारात्मक और नकारात्मक दो दृष्टिकोण से धर्म को परिभाषित किया है। जहाँ एक ओर सकारात्मक दृष्टिकोण का अवलम्बन करते हुए पाश्चात्य विचारक कान्ट कहते हैं कि "दैवी आदेश के रूप में कर्त्तव्यों की स्वीकृति ही धर्म है।"[39] वहीं नकारात्मक भावना से ओतप्रोत होकर मार्क्स ने धर्म को अफीम बताया। धर्म को डर उत्पन्न करने का माध्यम बताया। आंशिक विचारकों को छोड़कर अधिकतर विद्वान् धर्म को कर्त्तव्य के रूप में परिभाषित कर उसकी सकारात्मकता का मुक्त उद्घोष करते हैं।

भारतीय जनजीवन पूर्णतः धर्म से प्रभावित है। चूँकि धर्म भारतीय समाज का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, इसलिए संविधान में भी धार्मिक स्वतन्त्रता को अलग से स्थान दिया गया है। भारत के संविधान में अनुच्छेद 25 से लेकर 28 तक धार्मिक स्वतन्त्रता का उपबन्ध किया गया है। मुगलों और

---

[36] *महाभारत,* कर्णपर्व, 49/50.

[37] वैशेषिक सूत्र, 1/1/2.

[38] *मनुस्मृति,* 6/92.

[39] E. Kant, *Critick of pure risen,* पृ० 511.

यवनों आदि के आक्रमणों ने भारतीय जनजीवन के धार्मिक स्वतन्त्रता पर बर्बरता पूर्वक प्रहार किया और जबरदस्ती उनको धर्मविशेष को मानने पर विवश किया। यह मानवीय स्वतन्त्रता का पूर्णतः हनन था। धार्मिकता का अङ्गीकार प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसलिए भारतीय संविधान धार्मिक स्वतन्त्रता का प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 25 और 26 के अनुसार लोकव्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का और धर्माचरण करने तथा प्रचार का समान अधिकार है। अनुच्छेद 27 में धर्म की अभिवृद्धि हेतु धार्मिक संस्थानों को करमुक्त किया गया है । धार्मिक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि हेतु किसी व्यक्ति से कर नहीं लिया जाएगा। धार्मिक स्वतन्त्रता को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि पूर्णतः राज्याश्रित शिक्षण संस्थानों में किसी धर्मविशेष का पाठ्यक्रम नहीं पढाया जाएगा। इसके कई अपवाद भी हैं। जैसे- अनुच्छेद 29(3) में कहा गया है कि धर्म की शिक्षा लेना या न लेना किसी व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करेगा। इसमें राज्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। इस प्रकार मानवाधिकारों में धार्मिक स्वतन्त्रता सन्निहित है।

5. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights)

संस्कृति तथा शिक्षा का विकास एवं उसकी सुरक्षा किसी देश के विकास के लिए आवश्यक है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही विभिन्न वर्ग, जाति, सभ्यता आदि का निवास रहा है। इस प्रकार भारत में अनेकों संस्कृतियाँ संवर्धित हुई हैं। संस्कृति को परिभाषित करते हुए रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि जीवन-यापन की विविध शैली ही संस्कृति है।[40] इस विषय में मङ्गलदेव शास्त्री का कथन है कि सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से संप्रेरक आदर्शों की समष्टि को संस्कृति कहा जाता है।[41] संस्कृति के आधार पर ही व्यक्ति का आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि का निर्धारण होता है। मानव जीवन का समुचित विकास ही सभी संस्कृतियों का लक्ष्य होता है। मानव का सर्वाङ्गीण

[40] *संस्कृति के चार अध्याय*, प्रथम संस्करण, पृ० 653.

[41] उद्धृत, सुरेश गौतम, *अथर्ववेद एवं स्मार्तसंस्कृति*, प्रस्ताविक, पृ०10.

विकास भारत का प्रमुख लक्ष्य है, इसलिए भारत ने धर्मनिर्पेक्षता का चुनाव कर सभी संस्कृतियों को समान महत्त्व दिया। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी संस्कृति को अपना सकता है तथा अपने संस्कृति को विकसित करने का प्रयास कर सकता है। सभी व्यक्ति जीवन के तरीकों में स्वतन्त्र हैं परन्तु शर्त यह है कि किसी के अधिकार तथा समाज का अहित नहीं होना चाहिए। भारत का संविधान इसके लिए पूर्ण अधिकार देता है। भारत के संविधान में अनुच्छेद 29 और 30 में इसका उपबन्ध किया गया है। अनुच्छेद 29 में जो संस्कृति के सुरक्षा का प्रावधान किया गया है वह वास्तव में अल्पसंख्यकों के लिए है जो अपनी भाषा, संस्कृति, लिपि को बनाए रख सकते हैं। अनुच्छेद 29(2) में कहा गया है कि संस्कृति की सुरक्षा का लाभ केवल अल्पसंख्यकों को ही नहीं अपितु बहुसंख्यकों को भी दिया जाएगा।

शिक्षा मानव जीवन का एक अभिन्न अङ्ग है। मानव के सर्वाङ्गीण विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को जानकर उसके प्रति जागरूक हो पाता है। भारतीय संविधान में शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य कर दी गई है। किस व्यक्ति को कौन-सी शिक्षा लेनी है इसके लिए वह स्वतन्त्र है परन्तु शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। अनुच्छेद 30(1) में कहा गया है कि सभी वर्गों को धर्म और संस्कृति पर आधारित शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

संविधान के अनुच्छेद 32(1) में जन सामान्य को यह अधिकार दिया गया है कि मौलिक अधिकारों में किसी प्रकार के परिवर्तित या परिवर्धित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने इसको भारतीय संविधान की आत्मा माना है क्योंकि देश, काल और परिस्थिति के अनुसार जो नियम परिवर्तित या परिवर्धित नहीं होते, कालान्तर में समाज के लिए उनका पर्याप्त योगदान नहीं रह जाता।अतः मानवाधिकार को भारतीय संविधान में समुचित स्थान दिया गया है। वास्तव में मानवाधिकार की परिकल्पना प्राचीन भारतीय संस्कृति से ही चली आ रही है। विश्व के प्राचीनत ग्रन्थ ऋग्वेद में समानता, स्वतन्त्रता आदि के स्पष्ट संकेत हैं। ये सभी अधिकार मानवाधिकार में अन्तर्निहित हैं।

मानवाधिकार का उद्भव और विकास (Origin and Development of Human Rights)

मानवाधिकार का उद्भव प्रायः सौहार्द्र, समभाव, सहयोग और समता के मापदण्डों पर आधारित है। इसका आधुनिक स्वरूप तीन चरणों में विकसित हुआ है। प्राथमिक चरण में प्राकृतिक अधिकारों के सन्दर्भ में इसका उद्भव हुआ। इसके अन्तर्गत प्राकृतिक सुविधाओं पर सबका समान अधिकार निर्धारित किया गया।

वेदों में इन विचारधाराओं का प्राबल्य रहा है। मानवाधिकार को दीर्घकालीन धार्मिक, दार्शनिक एवं ऐतिहासिक मान्यताओं के समग्र विकास माना जा सकता है। इसकी जड़ें हमें प्राकृतिक विधि के रूप में भी देखने को मिलती हैं। मानवाधिकार के विकास में धार्मिक मान्यताओं का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विश्व की प्रायः सभी धार्मिक मान्यताओं में इसे किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकारा गया है । इस प्रकार विश्व के प्रायः सभी धर्मों में मानवाधिकारों के तत्त्व निहित हैं। वैदिक धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से एक है। जिसमें मानवाधिकार की भावना का व्यापक सन्निवेश है। भारतीय परम्परा मानव जीवन में अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए नैतिकता को अनिवार्य तत्त्व मानती है। वेद इस परम्परा के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, अतः इनमें नैतिक मूल्यों पर सर्वाधिक बल दिया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि जो सभी प्राणियों को आत्मवत् समझता है उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होता है।[42] तात्पर्य यह है कि हमें दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना चाहिए जो हमें अपने लिए अच्छा न लगता हो। अतः अपने लिए दूसरों से हम जिस व्यवहार की अपेक्षा करते हैं वही व्यवहार हमें अन्यों से करना चाहिए। इसी बात को महाभारत शब्दशः स्वीकार करता है। वह कहता है कि "**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।**"[43] अथर्ववेद कहता है कि "**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥**"[44] अर्थात् सभी के अन्न पानी का स्थान एक होना चाहिए अर्थात् समाज में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। इस प्रकार वेदों में यद्यपि मानवाधिकार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है तथापि सैद्धान्तिक पक्ष पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

---

[42] यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥, *शुक्लयजुर्वेद,* 40/6.

[43] *महाभारत,* 5/15/17.

[44] *अथर्ववेद,* 6/64/3.

विश्व में न्याय और शान्ति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों की मानवीय गरिमा का परस्पर आदर किया जाए। ऐसे में आज मानवाधिकार की अवधारणा को भारतीय दृष्टिकोण के व्यापक फलक पर देखने की आवश्यकता है, जिसमें एकाङ्गी नहीं वरन् भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक 'शम्' भावना का समन्वित विकास हो। आज आवश्यकता है व्यक्ति को समग्रता के आलोक में देखने की। जहाँ सभी मनुष्य समान हैं जाति, वंश, धर्म, कर्म आदि के आधार पर किसी को ऊँच-नीच नहीं समझना चाहिए। स्वस्थ समाज का निर्माण तभी सम्भव है जब परस्पर एक-दूसरे का आदर किया जाए। वेद प्रायः उन सभी मानवीय अधिकारों की बात करते हैं, जो एक मनुष्य को समाज में सम्माननीय जीवन के लिए आवश्यक हैं। जैसे- जीवित रहने का अधिकार, समता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार आदि। समाज में ही अधिकार और कर्त्तव्य सम्भव हैं। तभी गिलक्राइस्ट ने कहा है कि अधिकारों की उत्पत्ति इसी तथ्य से हुई है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।[45] अधिकारों के उद्भव के सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों में छः प्रकार के मत प्रचलित हैं-

1. अधिकारों का प्राकृतिक सिद्धान्त (Natural Theory of Rights)

हॉब्स, लॉक, रूसो, मिल्टन आदि का मानना है कि अधिकारों का उद्भव प्रायः प्राकृतिक अधिकारों से ही सम्भव हो सका है। इसके अन्तर्गत मानवाधिकार को पूर्णतया प्राकृतिक और जन्मसिद्ध माना जाता है। प्रकृति प्रदत्त सुविधाओं पर सभी व्यक्ति का समान अधिकार होता है। इन अधिकारों के संरक्षण हेतु ही राज्य का अविर्भाव हुआ है। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों की सर्वथा रक्षा करे।[46]

2. अधिकारों का वैधानिक सिद्धान्त (Legal Theory of Rights)

यद्यपि मानवाधिकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त होते हैं तथापि राज्य अपनी प्रजा को अधिकार प्रदान करके उनके अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करता है।[47] प्राकृतिक अधिकार ही जब राज्य के माध्यम से प्रजा को दिए जाते हैं तो वे वैधानिक अधिकार कहे जाते हैं। इस मत के समर्थकों में लॉस्की प्रमुख हैं।

---

[45] Rights arise from the fact that man is a social being, Gilchrist उद्धृत, डॉ. शिव भानु सिंह, *समाज दर्शन का सर्वेक्षण,* पृ०244.

[46] आर. सी. वरमानी, *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन,* पृ० 146.

[47] वही, पृ० 149.

3. अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धान्त (Historical Theory of Rights)

इसके अन्तर्गत यह माना जाता है कि अधिकार की संकल्पना ऐतिहासिक परिणाम है। रीति, नियम ही कालान्तर में आवश्यकता बन जाते हैं और आगे चलकर ये ही अधिकार के रूप में परिणत हो जाते हैं।[48] इस मत के समर्थकों में रिची, बर्क आदि आते हैं।

4. अधिकारों का नैतिक सिद्धान्त (Moral Theory of Rights)

उक्त मत के अन्तर्गत नैतिकता से ही मानवाधिकार का उद्भव स्वीकार किया जाता है। मनुष्यमात्र के अधिकारों की सुरक्षा करना जब व्यक्ति अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझ लेता है तो उक्त प्रक्रिया को मानवाधिकारों का नैतिक सिद्धान्त समझा जाता है।[49] व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक परिस्थिति नैतिकता का अङ्ग है। नैतिकता के ह्रास ने प्राकृतिक अधिकारों के अतिरिक्त अन्य विभिन्न प्रकार के अधिकारों को जन्म दिया। इस प्रकार मानवाधिकार के विकास में अधिकारों के नैतिक सिद्धान्त का प्रमुख योगदान रहा है। इस मत के समर्थकों में रूसो, हीगल, ग्रीन और बोसांके हैं।

5. अधिकारों का समाज-कल्याण सम्बन्धी सिद्धान्त (Social Welfare Theory of Rights)

इसने अपने से पूर्व प्रायः सभी सिद्धान्तों को अपने में विलय कर लिया क्योंकि इसकी विचारधारा अत्यन्त व्यापक थी। उदारवादी समर्थकों ने इसको विकसित किया। इसका मानना है कि रीति-रिवाजों तथा नियमों और परम्पराओं आदि का समाज कल्याण ही उद्देश्य होता है। अतः समाज के कल्याण के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियाँ सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यही परिस्थितियाँ मानवाधिकार कहलाई। [50]मानवाधिकार का उदारवादी सिद्धान्त भी इसी में समाहित हो जाता है। इसके समर्थकों में टी.एन.ग्रीन, जी.डी. एच. कोल, हॉबहाउस लास्की, बार्कर आदि प्रमुख हैं।

---

[48] आर. सी. वरमानी, *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन,* पृ० 151.

[49] वही, पृ० 153.

[50] वही, पृ० 154.

6. अधिकारों का मार्क्सवादी सिद्धान्त (Marxist Theory of Rights)

इसके अन्तर्गत कहा जाता है कि अधिकार क्रान्ति के परिणाम हैं। एक समुदाय ने मिलकर राज्य के खिलाफ क्रान्ति की और अपने लिए अधिकारों की माँग की। राजा को जनबल के समक्ष झुकना पडा और अधिकार का विकास हुआ।[51] यह मत नकारात्मक साबित हुआ।

उदारवादियों ने मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणापत्र के आधारभूत तत्त्व के रूप में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार पर ज्यादा बल दिया है जबकि मार्क्सवादियों ने इस संदर्भ में सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार पर अत्यधिक बल दिया है। फलत: उदावादियों द्वारा प्रस्तावित मानवाधिकार की धारणा मार्क्सवादियों को उचित नहीं लगती है।

यह तो सत्य है कि मानवाधिकार के आधुनिक स्वरूप का विकास एक लम्बी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सका है, इसके विकास में दार्शनिक मान्यताओं एवं धर्म, नीति सम्बन्धी विचारधाराओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, फिर भी मानवाधिकारों का उद्भव प्राकृतिक अधिकारों के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सका है। अन्य सभी सिद्धान्त मानवाधिकार के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार मानवाधिकार के आधुनिक स्वरूप में प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं नैतिक सिद्धान्तों का विशेष योगदान रहा है तथा अन्य सभी सिद्धान्त इसके विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। मानवाधिकार के विकास में वेदों का भी अपूर्व योगदान रहा है। यद्यपि मानवाधिकार की अवधारणा को पश्चिमी देशों की देन माना जाता है, तथापि विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में मानव सहित प्राणिमात्र के मूलभूत अधिकारों की व्यापक चर्चा है। अतः मानवाधिकार के सिद्धान्त वैदिक समाज में भी थे। इसलिए यह कहना कि मानवाधिकार का उद्भव 19वीं सदी में सम्भव हुआ है, मिथ्या प्रतीत होता है। मानवाधिकार के उद्भव और विकास में वेदों का अपूर्व योगदान रहा है। सत्यता तो यह है कि आधुनिक समय में जो भी मानवाधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त प्रकाश में आए हैं उनकी प्रारम्भिक जडें वेदों में सन्निहित हैं। इसलिए मानवाधिकार के चिन्तन का प्रारम्भ वेदों से माना जा सकता है। न्यायमूर्ति भगवती कहते हैं कि "ये मूल अधिकार वैदिक काल से इस देश के लोगों द्वारा संजोए आधार भूत मूल्यों का निरूपण करते हैं और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने तथा ऐसी दशाएँ उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त

[51] आर. सी. वरमानी, *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन,* 159.

हैं, जिनमें प्रत्येक मानव अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर सकता है।[52]" न्याय मूर्ति कृष्ण अय्यर ने वेदों में मानवाधिकार को स्वीकार करते हुए कहा है कि-"मानवाधिकारों की संकल्पना पश्चिम की देन है, क्योंकि अधिकारों की क्रान्ति का आरम्भ वर्तमान युग में ही दिखाई देता है, फिर भी समानता, सहयोग और सहकारिता के सिद्धान्त के जनक वेदों में मानवाधिकार की धारणा स्वाभाविक रूप से देखी जा सकती है।" वेदों में मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष को अधिकार, कर्त्तव्य, धर्म या नैतिकता के अन्तर्गत विश्लेषित किया गया है। वैदिक काल में धर्म ही सब पर शासन करता था। राजा धर्मानुकूल न्याय-विधान करता था। मानव जीवन से जुडे सभी पहलुओं पर वेदों में अत्यन्त गूढ़तापूर्वक विचार हुआ है। मानवाधिकार प्राचीनकाल से ही मानव जीवन का एक अभिन्न अङ्ग रहा है। अथर्ववेद में इसका भी पर्याप्त विवेचन मिलता है। यदि वैदिक मानवाधिकार को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हम देखने की कोशिश करें तो तत्कालीन समय में भी समता, स्वतन्त्रता, शिक्षा, अभिव्यक्ति, जीवन आदि के अधिकार सन्निहित दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार की दृष्टि से वेदों का विश्लेषण अत्यन्त रोचक विषय है।

॥इति॥

[52] मेनका गाँधी बनाम भारत संघ, A.I.R. 1978 S.C. 597. उद्धृत, डॉ. शिवदत्त शर्मा, *मानव अधिकार,* पृ०77.

3

तृतीय अध्याय

अथर्ववेद में मानवाधिकार

सम्भवतया वैदिक संस्कृति से पूर्व भी अनेकों संस्कृतियाँ अस्तित्त्व में रही होंगी, क्योंकि इसकी विचारधारा इतनी व्यापक तथा प्रौढ़ है कि इसको आदिम संस्कृति नहीं माना जा सकता। इस प्रकार वैदिक संस्कृति को प्राच्य संस्कृति के क्रमिक विकास के रूप में देखा जा सकता है। उक्त संस्कृति का प्रभाव इतना व्यापक था कि अन्य सभी संस्कृतियाँ अपने अस्तित्त्व की स्वतन्त्रता को बनाए रखने में समर्थ न हो सकीं और वैदिक संस्कृति में विलीन होती चली गईं। भारतवर्ष में चाहे कितनी ही संस्कृतियाँ अस्तित्त्व में रही हों परन्तु इसके अभ्युदय का श्रीगणेश वैदिककाल से ही सम्भव हो सका है। आदिकाल में मनुष्य अत्यन्त क्रूर था। समाज में पाशविक वृत्ति की प्रधानता थी। सम्भवतया मानवीय मूल्यों का विकास नहीं हो सका था इसलिए उचित-अनुचित का निर्धारण करने वाला कोई मानदण्ड नहीं था, परिणामस्वरूप चारो तरफ अराजकता परिव्याप्त थी। अराजकता में सन्नद्ध लोगों को नियन्त्रित करने के लिए वेदों का प्रणयन हुआ, जिसमें मानवीय मूल्यों का सम्यक् निर्धारण किया गया है। समाज को उचित-अनुचित कार्यों के बीच अन्तर निर्धारित करने वाला मापक मिला, जिसके परिणामस्वरूप लोगों में आत्मचेतना के स्वर मुखरित होने लगे। इस आत्मचेतना के विकास में वेदोक्त मानवीय मूल्य अत्यन्त सहायक सिद्ध होने लगे। इसलिए इनके विकास की परम्परा क्रमिक रूप से विकसित होती चली गई। जीवन में मानवीय मूल्यों के सन्निवेश से सभी लोगों को जीव-मात्र का महत्त्व समझ में आने लगा तथा प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रवृत्त होने लगे। सभी की समस्याएँ प्रायः समान थीं, इसलिए सभी से पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा की जाने लगी। यहीं से मानवाधिकार के विकास का

शुभारम्भ हुआ। मानवाधिकारों का स्वरूप सार्वभौमिक है। प्रत्येक समाज की संस्कृति के अनुरूप मानवाधिकारों की प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक समाज में मानवीय मूल्यों को अधिकार के रूप में विश्व के समस्त समाजों अथवा राष्ट्रों में समरूपता के लिए आवश्यक माना जाता है।

मानवाधिकार की परिकल्पना किसी भी समाज की वह आधारशिला होती है, जिसके अभाव में कोई भी समाज सुदृढ़ और सशक्त नहीं बन सकता। इसकी आकांक्षा के मूल में मानव विकास की परिकल्पना व्याप्त होती है। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्याय और उसके सम्मान की रक्षा करती है। इस परिकल्पना का उदय तभी हो चुका था, जब से मनुष्य ने अपने सामाजिक जीवन का आरम्भ किया था। समाज में सभी व्यक्तियों के कुछ न कुछ अधिकार होते हैं, जिन पर उनका अपना स्वामित्व होता है, उन अधिकारों के साथ यदि किसी प्रकार की अनधिकृत चेष्टा की जाती है, तो वह अपराध की श्रेणी में गिना जाता है। सामाजिक समस्याओं को लेकर यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जाए तो यही निष्कर्ष सामने आता है कि प्रायः सभी अपराधों के मूल में दूसरों के अधिकारों का हनन ही सन्निहित होता है। अधिकारों की यह व्यवस्था अत्यन्त प्राक्तनी परिकल्पना है। आदिम समाज में इसका स्वरूप क्या था? इसका विश्लेषण वैदिक ऋषियों ने अति सूक्ष्मता से किया है। उन्होंने कहा है कि प्रकृति-प्रदत्त सुविधाओं पर सबका समान अधिकार है। सम्भवतया यही अधिकार मानवाधिकार की प्रारम्भिक अवस्था यही रही होगी। इसके पश्चात् मानवाधिकारों का क्रमिक विकास होता चला गया।

वेदों में मानवाधिकार (Human Rights in The Vedas)

यद्यपि 'मानवाधिकार' पद का प्रयोग सर्वप्रथम रूजवेल्ट ने किया, तथापि यह विचार उतना ही पुराना है, जितनी कि मानवीय सभ्यता। प्रत्येक समाज का संचालन कुछ नैतिक मापदण्डों पर होता है। समाज की निरन्तरता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि उन नैतिक मूल्यों का समुचित पालन किया जाए। जहाँ तक मानवाधिकारों की आधुनिक मान्यता के विकास का प्रश्न है, यह एक नवीन परिकल्पना नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मानवाधिकार समाज की एक ऐसी इकाई है, जिसके अभाव में समाज की परिकल्पना असम्भव है। जबकि समाज की कल्पना मानव जीवन के इतिहास में अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक काल में सुव्यवस्थित समाज का स्वरूप अस्तित्व में आ चुका था, तभी से

मानवाधिकार की परिकल्पना मानी जानी चाहिए। वेदों में समाज व्यवस्था के विभिन्न पक्षों के साथ-साथ मानवाधिकारों का भी व्यापक सन्निवेश है। चारो वेद व्यक्ति को नैतिक रूप से उन्नत तथा कर्त्तव्यों के प्रति सजग बनाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार की अवधारणा सर्वथा नवीन नहीं है। आधुनिक मानवाधिकार का स्वरूप एक विकसित प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सका है। न्यायमूर्ति भगवती कहते हैं कि- "ये मूल अधिकार वैदिक काल से इस देश के लोगों द्वारा संजोए आधारभूत मूल्यों का निरूपण करते हैं और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने तथा ऐसी दशाएँ उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त हैं, जिनमें प्रत्येक मानव अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर सकता है। ये मानव अधिकारों के बुनियादी ढाँचे पर 'गारण्टी का प्रतिरूप' बुनते हैं और राज्य पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का इसके विभिन्न आयामों में अतिक्रमण न करने का वर्जनात्मक दायित्व आरोपित करते हैं।"[1]

मानवाधिकारों के अभाव में उन्नत समाज की परिकल्पना सर्वथा असम्भव-सी प्रतीत होती है जबकि वैदिककाल में समाजव्यवस्था अत्यन्त उन्नत रूप में विकसित थी, इसलिए उस समय में भी मानवाधिकार के सिद्धान्त अवश्य रहे हैं। यद्यपि वेदों में साक्षात् रूप से मानवाधिकार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है तथापि धर्म, कर्त्तव्य, नैतिकता आदि के अन्तर्गत इनके विभिन्न स्वरूपों का विश्लेषण हुआ है। प्राणी-मात्र के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होकर ही चारो वेद प्रकाश में आए हैं। वेदों में अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों को अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि एक-दूसरे के कर्त्तव्यों में ही पारस्परिक अधिकार सन्निहित होते हैं। यदि सभी व्यक्ति नैतिकतापूर्वक अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें तो किसी के अधिकारों के हनन की समस्या ही नहीं होगी। अधिकार और कर्त्तव्य एक दूसरे के सम्पूरक हैं। इसलिए वेदों में कर्त्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों का भी समायोजन है। आधुनिक समाज में वेदोक्त कर्त्तव्यों का प्रकाशन हो चुका है जबकि वेदोक्त अधिकारों की चर्चा अपेक्षाकृत कम हुई है। इसलिए वैदिक मानवाधिकारों का प्रकाशन आधुनिक समाज में अत्यन्त उपादेय है। वेद प्रायः उन सभी मानवीय अधिकारों की बात करते हैं, जो एक मनुष्य को समाज में सम्मानपूर्वक जीवन-यापन के लिए आवश्यक हैं। जैसे समता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अभिव्यक्ति

[1] मेनका गाँधी बनाम भारत संघ, A.I.R. 1978 S.C. 597.

का अधिकार आदि। यद्यपि वेद कर्त्तव्य पर व्यापक प्रकाश डालता है तथापि उनमें अधिकार भी सन्निहित हैं।

ऋग्वेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Rugved)

ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न सामाजिक मूल्यों का प्रतिपादन किया गया है। स्वस्थ समाज के निर्माण से ही जीव-मात्र का कल्याण सम्भव हो सकता है, इसलिए ऋग्वेद में सामाजिक समरसता हेतु विभिन्न प्रकार के आयामों का निर्देश किया गया है। ऋग्वेद में मानव बनना सभी मनुष्यों का प्राथमिक कर्त्तव्य बताया गया है।[2] अर्थात् वेदोक्त नैतिक मूल्यों को अपने आचार-विचार में समाहित करने वाला व्यक्ति ही मानव कहलाने का अधिकारी है। वही व्यक्ति मनुष्य है जो दूसरों के सुख और दुःख का विचार करके हानोपाय पूर्वक कार्यों में प्रवृत्त होता है। ऋग्वैदिक शिक्षाओं में मानव-मात्र की रक्षा का विधान किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि-"**पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः।**"[3] अर्थात् सभी मनुष्य एक-दूसरे की सर्वथा रक्षा करें। सम्भवतया यह मानवाधिकार का ही प्राचीनतम प्रारूप है, जिसमें मानवाधिकारों का सारतत्त्व सन्निहित है। ऋग्वेद का उक्त कथन मनुष्य-मात्र के जीवन के अधिकारों का भी उपलक्षण है। ऋग्वेद के सांमनस् सूक्त[4] में समानता का परिपोषण करते हुए कहा गया है कि सभी मनुष्यों के मन समान तत्त्व से बने हैं, सभी के चित्त का निर्माण भी समान प्रक्रिया से ही सम्भव हुआ है, सभी की समिति प्रायः एक जैसी ही होती है, इसलिए सभी मनुष्यों को एक-दूसरे के विचारों का सम्मान करना चाहिए। राजा सभी मनुष्यों को समान रूप से कार्यों में प्रवृत्त करता है।[5] इसलिए मनुष्यों में किसी प्रकार की असमानता नहीं होनी चाहिए। ऋग्वेद में विचारों की सीमा भी निर्धारित की गई है। कहा गया है जिस प्रकार विभिन्न सद्गुणों से युक्त देवतुल्य पूर्वजन परस्पर अविरोधी भाव से समानतापूर्वक संसार में विचरण करते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य समष्टि की भावना से अभिप्रेत होकर साथ-साथ उन्नत दशा को प्राप्त हों, परस्पर कल्याणकारी वाणी बोलें तथा समान

---

[2] मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ।, *ऋग्वेद,* 10/52/6.

[3] *ऋग्वेद,* 6/75/14.

[4] वही, 10/91/4.

[5] समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ वही, 10/191/3.

विचारवान् होकर अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करें।[6] ऋग्वेद में कहा गया है कि दैनिक जीवन की मूलभूत आवश्यकतओं जैसे- अन्न, जल आदि पर सबका समान अधिकार है। कोई भी मनुष्य किसी को इन वस्तुओं से वञ्चित नहीं कर सकता तथा अन्न, जल आदि को सबके लिए समान रूप से उपलब्ध कराए जाने का विधान किया गया है। विद्वेष आदि के वशीभूत होकर कोई व्यक्ति किसी का अहित न सोचे, सभी के मन में एक-दूसरे के प्रति आदर का भाव होना चाहिए।[7] कोई भी व्यक्ति समाज में किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार न करे।[8] सभी मनुष्य एक-दूसर की आवश्यकताओं का ध्यान रखें। अन्य प्राणियों की चिन्ता किए बिना जो व्यक्ति अकेला भोजन करता है, वह पाप का भागी बनता है।[9] इसलिए किसी भी व्यक्ति को उतने ही वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए, जितना उसके जीवन के लिए आवश्यक हो। अतः सभी मनुष्यों को त्यागपूर्वक जीवन का वितान करना चाहिए।[10] ऋग्वेद में वर्णित मानवाधिकारों में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु पशु-पक्षी भी समाहित किए गए हैं। पशुओं और पक्षियों के लिए भी उन मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है, जो मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि शकुनि को मनुष्य तो क्या श्येन, गरुड़ आदि भी न मारें।[11] अतः ऋग्वेद में प्राणिमात्र के प्राणों की रक्षा का विधान किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद में अनेकों ऐसे मन्त्र मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष पर तत्कालीन ऋषियों ने भी चिन्तन किया है।

यजुर्वेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Yajurved)

ऋग्वेद की अपेक्षा यजुर्वेद में मानवाधिकारों का अधिक विकसित रूप प्राप्त होता है। जहाँ ऋग्वेद में सभी मनुष्यों की समानता का विधान किया गया है, वहीं यजुर्वेद में अपने और पराए का भेद ही समाप्त कर दिया गया है। कहा गया है कि समाज में सुखी जीवन के लिए सभी लोग समस्त जीवों में

---

[6] सं ग॑च्छध्वं॒ सं व॑दध्वं॒ सं वो॒ मनां॑सि जानताम् । दे॒वा भा॒गं यथा॒ पूर्वे॑ संजाना॒ना उ॒पास॑ते ॥ *अथर्ववेद*, 10/191/2.

[7] स॒मा॒नी व॒ आकू॑तिः समा॒ना हृद॑यानि वः । स॒मा॒नम॑स्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ वः॒ सु॒स॒हास॑ति ॥ वही, 10/191/4.

[8] अ॒ज्ये॒ष्ठास॒ो अक॑निष्ठास ए॒ते सं भ्रात॑रो वावृधु॒: सौभ॑गाय । वही, 5/60/5.

[9] मोघ॒मन्न॑ वि॒न्दते॒ अप्र॑चेताः स॒त्यं ब्र॑वीमि व॒ध इत्स तस्य॑ । नार्य॒मणं॒ पुष्य॑ति॒ नो सखा॑यं॒ केव॑लाघो भवति केवला॒दी ॥ वही, 10/117/6.

[10] तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ । *शुक्लयजुर्वेद,* 40/1.

[11] मा त्वा॑ श्ये॒न उद्व॑धी॒न्मा सु॑प॒र्णो मा त्वा॑ विद॒दिषु॑मान्वी॒रो अस्ता॑ । पित्र्या॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ कनि॑क्रदत्सुम॒ङ्गलो॑ भद्रवा॒दी व॑दे॒ह ॥ ऋग्वेद, 2/42/2.

आत्मवत् भाव रखें।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि जुगुप्सते॥ [12]
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ [13]

अर्थात् जब मनुष्य दूसरों के सुख को अपना सुख और दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझकर सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति मान लेता है, जब वह सभी प्राणियों को आत्मवत् समझकर संसार में प्रवृत्त होता है, जब वह सभी जीवों में अपने-आप को देखता है तथा अपने-आप में सभी को देखता है, तब उसमें किसी प्रकार का दुःख, शोक नहीं रह जाता। समाज में सुखी रहने के लिए, ईर्ष्या आदि भावनाओं का त्याग अपेक्षित होता है, जिसके लिए मनुष्यों सहित सभी प्राणियों को आत्मवत् समझना अत्यन्त उपयोगी होता है। पुराण एवं महाभारत में उपर्युक्त तथ्य को और अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि- **"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"** [14] अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो उसे अपने लिए अपेक्षित न हो। यह भारतीय परम्परा द्वारा दी गई मानवाधिकार की उक्त परिभाषा आधुनिक मानवाधिकार के अन्त्यन्त सन्निकट है, जिसमें मानवाधिकारों के सभी अन्तस्तत्त्व सन्निहित हैं। जॉन लॉक जो आधुनिक उदारवाद के जनक माने जाते हैं, उक्त मत के आधार पर ही उन्होंने उदारवाद की स्थापना की। उपर्युक्त मत का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा है कि प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिए जो वह अपने लिए अपेक्षा करता है।[15] यह उक्ति पूर्णतः वेद और महाभारत की उक्तियों की प्रतिकृति है। प्राणिमात्र में मैत्रीभाव के सन्निवेश का उद्घोष करते हुए यजुर्वेद कहता है कि-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। [16]

---

[12] *शुक्लयजुर्वेद,* 40/6.

[13] वही, 40/7.

[14] *पद्मपुराण*, शृष्टि 19/357-358. *महाभारत*, 5/15/17.

[15] Do unto other, as you want athers to do unto you. *प्रमुख राजनीतिक विचारक,* पृ० 239.

[16] *शुक्लयजुर्वेद,* 26/2.

अर्थात् सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सभी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें तथा समय आने पर एक-दूसरे की सहायता करें।[17] अथर्ववेद में पारस्परिक सौहार्द्र की भावना का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सभी मनुष्यों को परस्पर उसी प्रकार प्रेम करना चाहिए जिस प्रकार गौ सद्यः जात अपने बछड़े से करती है।[18] मानव-मात्र के सम्मान में एक-दूसरे के अधिकारों की रक्षा सन्निहित होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को मैत्री, करुणा, मुदिता आदि से सन्नद्ध होकर लोक-व्यवहार में प्रवृत्त होना चाहिए। यजुर्वेद में समाज के सभी वर्गों को वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ने का समान अधिकार दिया गया है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च॥ [19]

इस प्रकार यजुर्वेद मानवाधिकारों की संकल्पना का विकसित रूप प्रस्तुत करता है।

सामवेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Samved)

सामवेद के अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। अतः जिन अधिकारों का वर्णन ऋग्वेद में हुआ है, प्रायः उन्हीं अधिकारों का विवेचन सामवेद में भी किया गया है। यत्र-तत्र स्वतन्त्र रूप से मानवाधिकारों के सङ्केत मिलते हैं। स्वभावतया मनुष्य अपने पड़ोसियों की उन्नति से ईर्ष्या करता है। उक्त विषय में सामवेद में ईर्ष्या का निषेध करते हुए कहा गया है कि सभी मनुष्यों को अपने पडोसियों की उन्नति से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए अपितु उसकी उन्नति में यथायोग्य सहयोग करना चाहिए।[20] इस प्रकार सभी मनुष्यों की बुद्धि सदा दूसरों का कल्याण चाहने वाली हो। इसी से ही जीवमात्र का कल्याण सम्भव हो सकता है।[21]

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ऋग्, यजुः और साम जन-मानस को पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र की शिक्षा देते हैं। एक व्यक्ति को जीवित रहने तथा उन्नत होने के लिए जो भी मूलभूत

---

[17] न स सखा यो न ददाति सख्ये। *ऋग्वेद,* 10/117.

[18] अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ *अथर्ववेद.* 3/30/1.

[19] *शुक्लयजुर्वेद*, 26/2.

[20] समानुं प्रशंसिषम्। *सामवेद*, 204.

[21] भद्राः हि नः प्रमतिः। वही, 66.

आवश्यकताएँ हैं, वेदों में उन पर सबका समान अधिकार बताया गया है, चाहे वह अन्न हो, जल हो या फिर शिक्षा। व्यक्ति के उत्थान से ही समाज का उत्थान सम्भव है। समाज में सबको साथ-साथ रहते हुए उन्नत दशा को प्राप्त होकर सुखपूर्वक जीवन-यापन का अधिकार वेदों में स्पष्ट परिलक्षित है। अतः मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष की अवधारणा वेदों में सन्निहित है। समाज में व्यक्तिमात्र का उत्थान हो इसके लिए वेदों में विभिन्न आचार-विचारों का प्रतिपादन है। इसमें मानवीय गरिमा को उन्नत करने के साथ-साथ परस्पर सौहार्द्रतापूर्वक जीवन जीने का सन्देश दिया गया है। इस प्रकार वेदों में मानवीय मूल्यों की प्राचीन संकल्पनाओं का व्यापक दृष्टि से विश्लेषण हुआ है।

अथर्ववेद में मानवाधिकार (Human Rights in The Atharvaved)

लौकिक जगत् में सामाजिक दृष्टि से अन्य तीनों वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद का अधिक महत्त्व है क्योंकि अथर्ववेद के अधिकतर सिद्धान्त लौकिक जगत् से साक्षात् सम्बद्ध हैं। अथर्ववेद में ऋग्वेदीय, यजुर्वेदीय और सामवेदीय मानवाधिकार सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं को अपेक्षाकृत अधिक विकसित रूप दिया गया है। इसमें प्रायः मानवोचित उन सभी अधिकारों का विशद विवेचन किया गया है, जो सामान्य मनुष्य को जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए यदि हम अथर्ववेद पर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसे अनेकों तथ्य सामने आते हैं, जिनका साक्षात् सम्बन्ध मानवाधिकार से है। वेदों में जितने भी अधिकार दिखाई पड़ते हैं, प्रायः सभी कर्त्तव्यमूलक ही हैं। ऐसे प्रसंग बहुत कम मिलते हैं, जहाँ स्वतन्त्र रूप से अधिकारों का विवेचन किया गया है। अन्य तीनों वेदों की अपेक्षा इसमें कर्त्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों की अधिक चर्चा की गई है। इसमें अधिकारों और कर्त्तव्यों में समन्वय दिखाई पड़ता है। समानता का परिपोषण करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि सभी मनुष्यों को ऐसे की कार्य करने चाहिए जिसमें सबकी सहमति हो।[22]

इस प्रकार अथर्ववेद में मानवाधिकारों के सैद्धान्तिक पक्ष का व्यापक सन्निवेश है। अथर्ववेदीय मानवाधिकारों को मुख्यतः आठ भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. जीवन का अधिकार (Right to Live)

i. हिंसक तथा विषैले प्राणियों के विनाश का अधिकार

---

[22] इमान् जनान्संमनसस्कृधीह। *अथर्ववेद*, 6/74/3.

2. सामाजिक अधिकार (Social Rights)

i. समानता का अधिकार (Right of Equility)

ii. शिक्षा का अधिकार (Right of Education)

iii. विवाह का अधिकार (Right to Marry)

iv. संगठन बनाने का अधिकार (Right to Make Unian)

3. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)

i. आजीविका की स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Work)

ii. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Speech)

4. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

5. धार्मिक अधिकार (Dharmik Rights)

6. राजनैतिक अधिकार (Political Rights)

(क) राजा के अधिकार

(ख) प्रजा के अधिकार

i. राजा चुनने का अधिकार (Right to Elect of King)

ii. चुनाव में भाग लेने का अधिकार (Right to Be King)

iii. सुरक्षा पाने का अधिकार। (Right to get Siquerity)

iv. काम पाने का अधिकार (Right to get work)

7. आर्थिक अधिकार (Economical Rights)

8. सांस्कृतिक अधिकार (Cultural Rights)

9. स्त्रियों के अधिकार (Woman Rights)

अथर्ववेदीय मानवाधिकारों का विश्लेषण (Critical Study of Human Rights in Atharvaved)

समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए अथर्ववेद में विभिन्न अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया है। कर्त्तव्यों के निर्धारण का मुख्य आधार योग्यता को माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति

को अपनी योग्यता का सटीक आकलन करके तदनुरूप ही कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए, योग्यता का सही आकलन जीवन के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध होता है। कर्त्तव्यों के निर्धारण का उक्त आधार मानव जीवन के विकास की दृष्टि से अत्यन्त वैज्ञानिक है, परन्तु परवर्ती विद्वानों द्वारा इसकी मनमानी व्याख्या की गई, जिसके परिणामस्वरूप वैदिक समाज की पूरी आधारशिला ही परिवर्तित हो गई। भारतीय मनीषियों में सुदृढ़ समाज की परिकल्पना का विचार पुरातन काल से चला आ रहा है। वेदों में विभिन्न सामाजिक पक्षों पर अत्यन्त वैज्ञानिक चिन्तन हुआ है। सम्पूर्ण अथर्ववेद में समाज के विविध पक्षों का विश्लेषण किया गया है। चूँकि समाज के विविध पक्षों में मानवाधिकारों की अवधारणा अपरिहार्य है, इसलिए इसमें मानवाधिकारों की संकल्पना भी सन्निहित है।

यद्यपि मानवाधिकार की अवधारणा को पश्चिमी देशों की देन माना जाता है तथापि विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में मानवसहित प्राणिमात्र के मूलभूत अधिकारों की विस्तृत चर्चा है। वेद प्रायः उन सभी मानवीय अधिकारों की बात करते हैं, जो एक मनुष्य को समाज में सम्मानपूर्वक जीवन-यापन के लिए आवश्यक है। अथर्ववेद में उपलब्ध उपर्युक्त मानवाधिकारों का विश्लेषण इस प्रकार है-

1. जीवन का अधिकार (Right to Live)-

जीवन का अधिकार मनुष्यमात्र के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है। क्योंकि जीवन के होने पर ही अन्य सभी अधिकार प्रवर्त्तन में आते हैं। आधुनिक समाज में सभी व्यक्तिओं को समान रूप से जीने का अधिकार है। इस अधिकार की संकल्पना वैदिक काल में भी की गई है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जीवन का अधिकार न केवल मनुष्यों का है अपितु पशु, पक्षी आदि सभी जीवों को पृथिवी पर समान रूप से जीने का अधिकार है-

सर्वो॑ वै तत्र॑ जीवति॒ गौरश्व॒: पुरु॑षः प॒शुः।
यत्रे॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यते॑ परि॒धिर्जीव॑नाय॒ कम्॥[23]

अर्थात् ईश्वर ने पृथिवी पर सभी जीवों को समान रूप से जीने का अधिकार दिया है। इसलिए अकारण कोई भी व्यक्ति किसी के जीवन के हरण का अधिकारी नहीं है। कहा गया है कि यदि कोई मनुष्य

[23] *अथर्ववेद*, 8/2/25.

क्रूरतापूर्वक किसी जीव को मारकर खाना चाहता है अथवा किसी को पीड़ित करता है तो राजा उसका विनाश कर दे।[24] दीर्घायु की प्रार्थना करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि पृथिवी पर ही मनुष्य यज्ञ का वितान करते हैं, इसी पृथिवी पर ही सभी मनुष्य जीवन धारण करते हैं और पृथिवी पर ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह पृथिवी हमारे प्राणों की रक्षा करे, कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्था से पूर्व मृत्यु को प्राप्त न हो।[25] इस प्रकार निरोग रहते हुए सभी व्यक्ति सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें।[26] आत्महत्या को सर्वथा निषिद्ध किया गया है।[27] कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को चिन्ताओं से मुक्त होकर उत्साह पूर्वक जीवन का यापन करना चाहिए।[28] अथर्ववेद में किसी भी प्रकार की हिंसा को सर्वथा नकारा गया है।[29] कहा गया है कि किसी को हिंसित करने का विचार करे राजा उसको विभिन्न यातनाओं से प्रताड़ित करे।[30] सभी को समान रूप से जीवन धारण करने का अधिकार है।[31] इसलिए कोई भी व्यक्ति मनमाने तरीके से किसी के जीवन का हरण नहीं कर सकता। अहिंसा मानवाधिकार का एक प्रबल पक्ष है, जिसके लिए अथर्ववेद सदा अहिंसा और अविद्वेष के आचरण को उत्तम मानता है।[32] अहिंसा का प्राबल्य अथर्ववेद में इतना अधिक है कि कृषि आदि कार्यों के लिए पृथिवी पर किए जाने वाले घावों को करने से पहले पृथिवी से क्षमा-याचना की गई है। प्रायः ईर्ष्या, द्वेष आदि के वशीभूत होकर ही मनुष्य एक-दूसरे पर घातक प्रहार करता है, इसलिए अथर्ववेद कहता है कि न कोई हम से द्वेष करे और न ही

---

[24] यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्नाया भरति क्षीरमग्ने तेषा शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥ *अथर्ववेद*, 8/3/15.

[25] भूम्या देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमर कृतम्। भूम्या मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः। सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु॥ वही, 12/1/22.

[26] मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्। सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु॥ वही, 7/53/4.सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्। शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥ वही, 7/53/2. वही, 7/53/3. जीवेम शरदः शतम्। *शुक्लयजुर्वेद*, 36/34.

[27] तनूनपात्, *अथर्ववेद,* 5/12/2.

[28] इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह। वही, 5/30/6.

[29] मा नो हिंसीः। वही,, 11/2/10

[30] यो न स्तायद्दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने। प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान्मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम्॥ वही,, 7/108/1

[31] इमं जीवेभ्यो परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्। वही,12/2/23

[32] मा नो द्विक्षत कश्चन। *अथर्ववेद,* 12/1/18. मैनं हिंसीः, मा नो हिंसीः। वही, 11/2/20.

हम किसी से द्वेष करें।[33] द्वेष करने वाले मनुष्यों से अधिक द्वेषकारी वृत्तियों के विनाश को महत्त्व दिया जाना चाहिए।[34] यदि कोई व्यक्ति दुष्ट वृत्तियों के वशीभूत होकर समाज में किसी प्रकार की शत्रुता उत्पन्न करता है तो राजा उसका दमन करे और समाज को भय से मुक्त करे।[35] इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि अथर्ववेद में सम्पूर्ण प्रजा को निर्भीक विचरण के अधिकार का प्रावधान है। अभिचार कर्मों का प्रयोग सर्वथा वर्जित बताया गया है, फिर भी यदि कोई व्यक्ति इसका प्रयोग करता है तो राजा उसको दण्डित करे।[36] दुष्टों का शमन करते हुए राजा प्रजा का प्रिय बने।[37] राष्ट्र में उसका कोई शत्रु न हो, न्याय की व्यवस्था भी वह अहिंसापूर्वक ही करे। योग दर्शन कहता है कि जो व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है उसका कोई शत्रु नहीं होता ।[38] राजा को अहिंसा का पालन करना चाहिए। जो अपने किसी लाभ के लिए पशुओं की हिंसा करता है, राजा द्वारा उसको कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।[39] इस प्रकार अथर्ववेद के अस्तित्व में आने तक जीवन का अधिकार पूर्णतः विकसित हो चुका था।

i. हिंसक तथा विषैले प्राणियों के विनाश का अधिकार-

यदि कोई हिंसक प्राणी किसी के ऊपर आक्रमण करता है तो सरकार द्वारा संरक्षित होने पर भी उसको मारा जा सकता है। आधुनिक समय में भी यह अधिकार सभी मनुष्यों के पास सुरक्षित है। कोई हिंसक प्राणी किसी के ऊपर आक्रमण न करे इसके लिए सरकार व्यवस्था करती है। यदि कोई वन्य प्राणी मनुष्य के आवासीय क्षेत्र में आ जाता है तो वन विभाग उस जीव को मानव समाज से दूर करवाने का प्रयास करता है, यदि उस पर नियन्त्रण की संभावना प्रतीत नहीं होती तो पशु को मार दिए जाने का आदेश दे दिया जाता है। अथर्ववेद में भी उक्त अधिकार का विवेचन हुआ है। चूँकि सम्पूर्ण नियम-

---

[33] मा सो अ॒स्मान् द्वि॑क्षत॒ मा व॒यं तम् । *अथर्ववेद*, 12 /2 /33.

[34] वि द्विषो॒ वि मृधो॒ जहि । वही, 19/15/1. भि॒न्धि वि॒श्वा अप॒ द्विषः॑ । वही, 20/43/1.

[35] अ॒श॒त्रि॒न्द्रो॒ अभ॑यं नः कृणोतु । वही, 6/40/2.

[36] अपि॑ नह्यामि ते बा॒हू अपि॑ नह्याम्या॒स्यम् । अ॒ग्नेर्घो॒रस्य॑ म॒न्युना॒ तेन॑ तेऽवधिषं ह॒विः॥ वही, 7/70/5.

[37] विश॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु । वही,4/8/4.

[38] अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । *योगदर्शनम्*, 2/25.

[39] यः पौरु॑षेयेण क्र॒विषा॑ सम॒ङ्क्ते यो अश्व्ये॑न प॒शुना॑ यातु॒धान॑ः। यो अ॒न्याया॒ भर॑ति क्षी॒रम॑ग्ने॒ तेषा॑ शी॒र्षाणि॒ हर॒सापि॑ वृश्चः॥ वही, 3/8/15.

अनुशासन का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है, इसलिए मनुष्य के लिए घातक जितने भी हिंसक तथा विषैले प्राणी हैं, अथर्ववेद में उनके विनाश का प्रावधान है -

अरसस्य॑ शर्को॑टस्य नी॒चीन॑स्योप॒सर्प॑तः।
वि॒षं ह्य॑स्यादि॒ष्यथो॑ एनमजीजभम् ॥ [40]

अर्थात् राजा प्रथमतया उनके विष के प्रशमन का उपाय करे, यदि आवासीय प्रदेश में विषैले जीव-जन्तु अधिक हो जाएँ, समाज को कष्ट पहुँचाने लगें तो वह प्राण घातक विषैले प्राणियों को जन प्रदेश से दूर करवा दे या फिर उनका विनाश करवा दे ताकि प्रजा किसी प्रकार के भय से आक्रान्त न रहे। कोई भी मनुष्य ऐसे प्राणियों की हत्या तभी कर सकता है जब हिंसक जीव उसके ऊपर आक्रमण या प्रहार करे।

यद्यपि वैदिक संस्कृति में जीवमात्र के अधिकारों की सुरक्षा का विधान है, सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में अहिंसा को सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अङ्ग माना गया है, तथापि मानव समाज के लिए संकट उत्पन्न करने वाले विभिन्न प्राणियों के विनाश का भी विधान है। अतः अथर्ववेद मानव के विध्वंसक प्राणियों के विनाश का अधिकार देता है।

2. सामाजिक अधिकार (Social Rights)-

सामाजिक अधिकार के अन्तर्गत वे अधिकार आते हैं जिनका साक्षात् सम्बन्ध समाज से होता है। समाज को परिभाषित करते हुए गिलिन ने कहा है कि- "समाज अपेक्षाकृत सबसे बडा और स्थाई समूह है, जो समान हितों, समान भूभाग, समान रहन-सहन, तथा पारस्परिक सहयोग अथवा अपनत्व की भावना से युक्त है एवं जिस आधार पर वह स्वयं को बाहर के समूहों से पृथक् रखता है।"[41] इस प्रकार उक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समाज समानता और सहकारिता की भावना पर आश्रित होता है। भारतीय संस्कृति में समाज की अवधारणा प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। आधुनिक समाज में वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त विवादित विषय है। वैदिक संहिताओं के आधार पर वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन निम्न है-

---

[40] *अथर्ववेद*, 7/56/5.

[41] J.L. Gillin, *Theways of Man*, p. 340.

वर्ण-व्यवस्था (Varna System)-

वर्ण-व्यवस्था वैदिक संस्कृति का एक अभिन्न अङ्ग है। वेदों में इसका विभाजन सर्वथा कर्म के आधार पर किया गया है। वर्ण के विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ [42]

अर्थात् ब्राह्मण समाज का मुख है। चूँकि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मुख भाग पर ही सुस्थित हैं और इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही विभिन्न प्रकार का ज्ञान-विज्ञान सम्भव हो पाता है। ज्ञान-विज्ञान का सम्पूर्ण कार्य ब्राह्मण करता है, इसलिए उसको समाज का मुख कहा गया है। क्षत्रिय अपनी भुजाओं से सबकी रक्षा करता है, इसलिए उसको समाज की भुजा कहा गया है। श्रम का कार्य कटि, जघन आदि प्रदेश से सम्भव हो पाता है, वैश्य विभिन्न प्रकार का श्रम करके राजकीय कोष की श्रीवृद्धि करता है अतः उसको समाज का कटिभाग माना गया है। जिस प्रकार पैर सम्पूर्ण शरीर के भार का वहन करते हैं, उसी प्रकार शूद्र भी सम्पूर्ण समाज की सेवा करके अन्य वर्णों की सहायता करता है, इसलिए उसको समाज का पैर कहा गया है। वेदों में विभिन्न वर्णों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं माना गया है।[43] अथर्ववेद में वर्ण शब्द चुनने अथवा स्वीकार करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद समाज को चार वर्णों में विभाजित करता है क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह विभाजन सर्वथा कर्म पर अधारित है।

i. ब्राह्मण (Brahman)-

ब्राह्मण समाज का वह वर्ग होता है, जो शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि रखकर तदनुरूप जीवन-यापन करता है, वह ब्राह्मण की संज्ञा से अभीहित किया जाता है। कौन व्यक्ति ब्राह्मण कहलाएगा? ब्रह्मगवी के विवेचन प्रसंग में वर्णन करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि-

श्रमेणं तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वितर्ते श्रिता।
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता।
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे। प्रतिष्ठिता लोको निधनम्।

---

[42] *अथर्ववेद,* , 19/6/6, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ *ऋग्वेद,* 10/90/12.

[43] प्रियं सर्वस्व पश्यत उत शूद्र उतार्ये । वही, 19/62/1.

ब्रह्म॑ पदव॒यं ब्रा॑ह्म॒णोऽधि॑पतिः।[44]

अर्थात् श्रमपूर्वक जीवन-यापन करने वाला, तप अर्थात् सुख, दुःखादि द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियों से प्रभावित न होने वाला, ब्रह्मज्ञान में सन्नद्ध, सत्य के प्रति निष्ठावान्, श्री अर्थात् मेधा सम्पन्न, यशस्वी, श्रद्धावान्, दीक्षा तथा यज्ञ के प्रति निष्ठावान् व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है, जो समाज में सबसे अधिक पूजनीय है।[45]

ii. क्षत्रिय (Kshatriya)-

समाज का वह वर्ग जो रक्षा, शस्त्र, युद्धादि रक्षण गतिविधियों में रुचि रखकर समाज और राष्ट्र की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझे, क्षत्रिय कहलाता है ।[46] क्षत्रिय के गुण और कर्त्तव्य को निर्धारित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि-

को अ॒स्या नो॑ द्रु॒होऽव॒द्यव॑त्या॒ उन्ने॑ष्यति क्ष॒त्रियो॒ वस्य॑ इ॒च्छन्।
को य॒ज्ञका॑मः॒ क उ पू॒र्तिका॑मः॒ को दे॒वेषु॑ वनुते दी॒र्घमायुः॑॥ [47]

अर्थात् जो व्यक्ति राष्ट्र की श्री वृद्धि चाहते हुए राज्य सम्बन्धी सभी विवादों को शान्त करने में प्रयत्नशील रहता है तथा यज्ञ में रुचि रखने वाला होता है, वही क्षत्रिय होता है।

iii. वैश्य (Vaishya)-

समाज का वह वर्ग जो वाणिज्य, व्यापार आदि में रुचि लेता है वैश्य कहलाता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में इन्द्र को वणिक् के रूप में वर्णित करते हुए उसका प्रधान कार्य वाणिज्य बताया गया है-

इन्द्र॑म॒हं व॒णिजं॑ चोदयामि॒ स न॒ ऐतु॑ पुरए॒ता नो॑ अस्तु।
नु॒दन्नरा॑तिं परिप॒न्थिनं॑ मृ॒गं स ईशा॑नो धन॒दा अ॑स्तु॒ मह्य॑म्॥ [48]

---

[44] *अथर्ववेद*, 12/5/1-4.

[45] brahmana [1. brâhmaná] m. (having to do with Brahman or divine knowledge), one learned in the Veda, theologian, priest, Brâhman, man of the first of the four castes; ep. of Agni., *A practical Sanskrit dictionary*, p. 193.

[46] ksatriya [kshatr-íya] a. ruling; m. ruler; man, â, f. woman, of the military caste; n. sovereign power, dominion: -½anta-kara, m. ep. of Parasurâma., *A practical Sanskrit dictionary,* p. 077

[47] *अथर्ववेद,* 7/103/1.

[48] वही, 3/15/1. vaisya [vaís-ya] m. [vis] man of the people or the third caste., *A practical Sanskrit dictionary*, p. 300.

iv. शूद्र (Sudra)-

समाज का वह वर्ग जो उपर्युक्त किसी भी कार्य की दक्षता में असमर्थ होता है तथा आजीवका हेतु स्वरुचि से सेवा आदि किसी अन्य कार्य को अपनाता है वह शूद्र कहलाता है।[49] विभिन्न प्रकार की असामाजिक गतिविधियों में संलग्न रहने वाले लोग भी शूद्र की कोटि में आते हैं। इस प्रकार अथर्ववेद दो प्रकार के शूद्रों का वर्णन करता है -

i. एक वे व्यक्ति भी शूद्र कहे जाते हैं ,जो हिंसा, चोरी, लूट आदि से अपने जीवन का निर्वाह करते हैं।

ii. दूसरे वे भी शूद्र कहे जाते हैं, जो समाज के सहायक होते हैं तथा अन्य तीनों वर्णों के लिए निर्दिष्ट कार्यों के अतिरिक्त किसी अन्य समाज सम्मत कार्यों के द्वारा जीवन का निर्वहन करते हैं।

अथर्ववेद में शूद्रता के परित्याग की बात कही गई है। निकृष्ट कर्मों का त्याग कर देने वाला व्यक्ति शूद्र नहीं कहलाता है।

दस्यु (Dasyu)-

विभिन्न कार्यों में समर्थ होते हुए भी, जो किसी प्रकार का कार्य नहीं करता, उसको दस्यु कहा गया है।[50] इनका अपर नाम निषाद है। अथर्ववेद में यज्ञादि कार्यों में विश्वास रखने वालों को आर्य कहा गया है। ये आर्य, दस्यु के विपरीत कर्म वाले होते हैं।[51] ऋग्वेद में यज्ञादि गतिविधियों में रुचि लेने वाले, व्रती, आस्तिक और कर्मठ व्यक्ति को आर्य कहा गया है तथा इसके विपरीत यज्ञ का विरोध करने वाले, आलसी, नास्तिक और अकर्मण्य को दस्यु अथवा निषाद कहा गया है।[52] समाज के विकास में इनका

---

[49] ब्रह्मणे ब्रह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् । यजुर्वेद, 30/5., sudra [sûdrá] m. man of the fourth or servile class: -ka, m. N. of a king, the reputed au thor of the Mrikkhakatikâ; N. of a soldier; -gana, m. Sûdra; -ganman, a. descended from a Sûdra; m. Sûdra; -tâ, f., -tva, n. condition of a Sûdra; -dharma, m. duty of a Sûdra; -yâgaka, a. sacrificing for a Sûdra., *A practical Sanskrit dictionary*, p. 317.

[50] अ॒क॒र्मा दस्यु॑र॒भि नो॑ अम॒न्तु॒र॒न्यव्र॑तो॒ अमा॑नुषः । ऋग्वेद, 10/22/8., dasyu [dás-yu] m. class of demons hostile to the gods and frequently represented as being over- come by Indra and Agni, fiend, foe of the gods, unbeliever (V.); man of non-Brâh- manical tribes; robber. *A practical Sanskrit dictionary*, p. 115.

[51] यदी॒ विशो॑ वृ॒णते॑ दु॒स्ममार्यो॑ अ॒ग्निं होता॑रमध्व॒ धीर॑जायत । *अथर्ववेद,* 18/1/21.

[52] ऋग्वेद, 10/51/8-9.

कोई विशेष योगदान नहीं होता है अतः सामाजिक वर्गों में इनकी गणना नहीं की गई। इस प्रकार अथर्ववेद समाज को मुख्यतः चार वर्णों में विभाजित करता है तथापि किसी को ऊँच-नीच नहीं समझा गया है। सभी वर्णों के लिए समाज में विभिन्न अधिकारों का प्रावधान है।

सामाजिक अधिकार वे अधिकार होते हैं, जो समाज में निर्बाध-जीवन के लिए आवश्यक होते हैं। मानव के व्यक्तित्त्व के विकास में इनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सामाजिक मानवाधिकार को स्पष्ट करते हुए हैराल्ड जे. लास्की कहते हैं कि "अधिकार मानव के सामाजिक जीवन की ऐसी शर्तें हैं, जिनके बिना कोई व्यक्ति अथवा मानव सामान्यतः अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता।"[53] इस प्रकार सामाजिक अधिकार सभी अधिकारों के मूल में अन्तर्निहित होते हैं। अथर्ववेद में सामाजिक जीवन के सभी पक्षों पर गहन चिन्तन हुआ है। यद्यपि वेदों में कहा गया है कि समाज में ब्राह्मण का अधिक सम्मान किया जाना चाहिए, क्योंकि वह यथार्थ विद्या का ज्ञाता होने के साथ-साथ समाज का उन्नायक होता है, तथापि अन्य किसी के साथ भेद-भाव का समर्थन नहीं किया गया है। तत्कालीन समाज में भी कुछ स्वार्थीजन समाज में ऊँच-नीच का भाव रखते होंगे, तभी तो वेद ने कथन किया है कि **प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।** [54] अर्थात् समाज में सभी को समान समझना चाहिए, चाहे वह शूद्र हो या आर्य। समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति समान हैं तथा जीवन जीने के लिए उपयोगी आवश्यक तत्वों पर सबका समान अधिकार है। वर्ण, रंग, कर्म आदि के आधार पर किसी को ऊँच-नीच नहीं समझा जाना चाहिए, सबके साथ आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। अपराधियों के साथ भी समाज में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। राजा ही केवल अपराधियों को दण्ड देने का अधिकारी होता है। समाज में किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो, इसके लिए अथर्ववेद में सप्तमर्यादाओं का निर्धारण किया गया है, जिसमें चोरी, बडों का निरादर, सत्य पर अविश्वास, गर्भपात, पाप करके उसको न मानना, सुरापान, दुष्कर्म सम्मिलित हैं।[55] अथर्ववेद में ऐसे अनेकों सिद्धान्त मिलते हैं, जिनसे मानवाधिकार के विभिन्न सैद्धान्तिक पक्ष परिपुष्ट होते हैं।

---

[53] उद्धृत, *मानव अधिकार*, पृ०19.

[54] *अथर्ववेद,* 19/62/1.

[55] सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात् । आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥ अथर्ववेद, 5/1/6 *अथर्ववेदभाष्यम्*, पृ० 361.

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई होती है, इसलिए अथर्ववेद में पारिवारिक वैमनस्य आदि की विनिर्मुक्ति के विभिन्न आचार-विचारों का विवेचन किया गया है। इसमें परिवार के विभिन्न सम्बन्धों के आधार पर अधिकारों और कर्त्तव्यों का समन्वय बताया है। पारिवारिक समरसता हेतु कहा गया है कि पुत्र, माता-पिता की आज्ञा का पालन करे, पत्नी सदा मधुर और शान्तिप्रद वाणी बोले[56], भाई, बहन, माता, पिता, पुत्र तथा परिवार के सभी सदस्य परस्पर कल्याणकारी वाणी बोलें। सभी को अपने से बड़ों का सम्मान करना चाहिए, परस्पर प्रीतिभाव रखना चाहिए, समान रूप से कार्य करना चाहिए, मिलकर एक साथ उन्नति करनी चाहिए, आदि विषयों को वेद में स्पष्ट कहा गया है।-

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥ [57]

यद्यपि अथर्ववेद में अनेकों सामाजिक अधिकार अन्वेषित किए जा सकते हैं तथापि अथर्ववेदोक्त मनुष्यों के सामाजिक अधिकार को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है-

i. समानता का अधिकार (Right of Equility)
ii. शिक्षा का अधिकार (Right of Education)
iii. विवाह का अधिकार (Right to Marry)
iv. संगठन बनाने का अधिकार (Right to Make Unian)

i. समानता का अधिकार (Right of Equility)-

आधुनिक मानवाधिकारों की परिकल्पना में समानता के अधिकार का प्राथम्य है। भारतीय संविधान में कहा गया है कि विधि के समक्ष सभी को समान माना जाएगा। वैदिक काल में भी राजा तथा समाज के समक्ष सभी व्यक्तियों की समानता हेतु विभिन्न अधिकारों के बहुशः संकेत मिलते हैं। अथर्ववेद के सम्पूर्ण संगठनसूक्त में समानता का ही प्रावधान किया गया है। मनुष्यों की समानता का प्रतिपादन करते हुए उक्त वेद में कहा गया है कि सभी के हृदय समान हैं, इसलिए कोई भी व्यक्ति किसी से द्वेष न करे, सभी आपस में मिलकर प्रीतिपूर्वक रहें। सभी मनुष्य परस्पर इस प्रकार से प्रेम करें जिस

[56] अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥ *अथर्ववेद,* 3/30/2.
[57] वही, 3/30/5.

प्रकार गौ अपने सद्य जात बछड़े से करती है-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ [58]

अथर्ववेद में प्रजा को पाँच भागों में विभक्त किया गया था- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद अथवा दस्यु। इसमें पृथिवी को सभी की माता कहा गया है[59] और कहा गया है कि माता के सभी पुत्र समान हैं, उनके विचारों में वैपरीत्य का अभाव हो। सभी लोग एक-दूसरे को ठीक प्रकार से जान लें तथा परस्पर विचार करके ही किसी निर्णय में प्रवृत्त हों।[60] उदय होता हुआ सूर्य इन पर समान रूप से अपनी किरणों का प्रसार करता है। अर्थात् उत्कर्ष को प्राप्त करता हुआ राजा सभी प्रजा के साथ समानता पूर्वक व्यवहार करता है।[61] सभी का कल्याण तभी सम्भव है, जब राजा सभी के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करे। राजा को अपना राज-काज इस प्रकार चलाना चाहिए कि सभी प्रजा उसको चाहने लगे।[62] प्रजा के मानस पटल पर अपनी उज्ज्वल छवि बनाकर ही राजा स्थाई रूप से राज कर सकता है। राजा की लोकप्रियता तभी सम्भव है, जब राजा समदर्शी हो, न्याय आदि की प्रक्रिया में किसी प्रकार का पक्षपात न करे। वह ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि से ऊपर उठकर सभी प्रजा के साथ समानतापूर्वक व्यवहार करे। प्रजा से सहयोग की अपेक्षा करते हुए वह कहता है कि राज्य में रहने वाले सभी व्यक्तियों का मन एक समान हो, अविरुद्ध स्वभाव वाले होकर सभी राष्ट्र की उन्नति में सहायक हों-

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतिर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि॥ [63]

समाज में सभी के साथ-साथ निवास करने, एकसाथ भोजन ग्रहण करने[64], एक साथ मिलकर ईश्वर की

---

[58] *अथर्ववेद*, 3/30/1.

[59] माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। वही, 12/1/12.

[60] जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु। वही, 3/4/3, सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्। वही, 6/64/1.

[61] त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥ वही, 12/1/15.

[62] विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु। वही, 4/8/4.

[63] वही, 3/8/5.

[64] सहभक्षाः स्याम। अथर्ववेद, 6/47/1, समानी प्रपा सह वोऽन्न भागः। वही, 3/30/6.

उपासना करने का विधान किया गया है।[65] कूप, तालाब आदि पानी भरने के संसाधन सभी लोगों के लिए समानरूप से उपलब्ध कराए गए हैं। एक ही कूप से आस-पास के सभी वर्ण, समुदाय के लोग आकर पानी भरें। कूप आदि का उपयोग किसी वर्ण, स्थानविशेष पर रहने वाले लोगों के लिए किसी विशेष कूप आदि की व्यवस्था नहीं की गई है-

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥[66]

उक्त विषय को ही पुष्ट करते हुए अथर्ववेद में ही अन्यत्र कहा गया है कि-

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥[67]

अन्न, पानी के साथ-साथ सभी को मिलकर विभिन्न कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। समाज के सभी लोग इस प्रकार से रहें, जैसे रथ के पहिए में आरे जुड़े होते हैं। रथ के पहिए में एक-एक आरे का स्वतन्त्र रूप से कोई विशेष महत्त्व नहीं होता है परन्तु जब सभी एक साथ मिलकर परस्पर सहयोगपूर्वक कार्य करते हैं तो बड़े-बड़े भारों को भी आसानी से वहन कर लेते हैं। ठीक इसी प्रकार समाज में यदि सभी व्यक्ति एक साथ मिलकर आपसी सहयोग से जीवन-यापन करते हैं, तो बड़े-से बड़ा दुःख भी आसान हो जाता है। अथर्ववेद सभी के आचार-विचार में समानता, सभी के चित्त आदि की समानता पारस्परिक कलह आदि के विनाश की बात करना सभी व्यक्तियों के समानता की ओर ही संकेत करता है-

समानो मन्त्रः समिति समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम्॥[68]

सभी के काम करने का तरीका नैतिक हो, जन कल्याण सबका उद्देश्य हो, इसके लिए राजा सभी को समान रूप से कार्यों में प्रवृत्त करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सभी को समान रूप से कार्य पाने का अधिकार है। राज्य में कोई व्यक्ति अकर्मण्य न हो, इसके लिए राजा को समुचित कार्य का प्रबन्ध

---

[65] समेत विश्वे वचसा पतिं दिवः। *अथर्ववेद*, 7/21/1.

[66] वही 6/64/3.

[67] वही, 3/30/6.

[68] वही, 6/64/2.

करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी के साथ भेदभाव आदि के माध्यम से समाज में किसी प्रकार का द्वेष फैलाता है तो राजा द्वारा उसको कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युऽब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु॥ [69]

राजा द्वारा दिए गए अपराध का उद्देश्य अपराधी को उचित मार्ग पर लाना होता है। दण्ड दिए जाने पर अपराधी स्वयं क्षमा-याचना करता है और कल्याणकारी मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा करता है।[70] राज्य में सौम्यता तथा समानता की स्थापना के लिए राजा ईश्वर के सहयोग हेतु प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे सब प्रजाओं के जन्मदाता प्रभु! आपकी कृपा से मुझे सन्तान जैसी प्रजा की प्राप्ति हो, वे प्रजाएँ समान नैतिक मूल्यों वाली हों, कार्यों के विषय में सभी एकमत हों, कोई व्यक्ति किसी के कार्य का विरोध न करे अर्थात् पारस्परिक सहमति से ही सभी लोग कार्यों में प्रवृत्त हों, सभी प्रजाएँ मेरे आज्ञा को मानने वाली हों तथा मेरे राजकार्य में सहायक हों।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनसस्यमानः।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु॥ [71]

अर्थात् राजा ईश्वर की अनुकम्पा से राज्य में अविद्वेष और समानता की स्थापना करे। वेद में कहा गया है कि अनैतिक, दुराचारी व्यक्तियों से भी सभी लोग प्रेमपूर्वक व्यवहार करें ताकि उसको उत्तम सुपन्थ का अनुगामी बनाया जा सके। स्त्रियों के, बड़े-बड़े यज्ञों तथा समारोहों में समानरूप से भाग लेने का वर्णन प्राप्त होता है।[72] इससे यह स्पष्ट है कि पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी विभिन्न कार्यों में समानरूप से अधिकारिणी हैं। इसमें सभी मनुष्यों को परमात्मा की सन्तान के रूप में देखा गया है।[73] अविद्वेषी होकर

---

[69] *अथर्ववेद*, 11/1/6 .

[70] मा नोऽभि ख्वा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते। अन्यत्रास्मद्दिव्यां शाखां वि धूनु॥ वही, 11/2/19. मत्यम् = मते समीकरणे साधुः। सबको बराबर कर देने वाली। *अथर्ववेदभाष्यम्*, पृ० 424.

[71] वही, 7/19/1.

[72] सहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति। *अथर्ववेद* वही, 20/126/10. आचार्य कपिलदेव ने समनम् का अर्थ युद्ध मानकर यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि स्त्रियाँ युद्ध में भी भाग ले सकती थीं। अथर्व वेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 70

[73] स नः पिता जनिता स उत बन्धुः। वही, 2/1/3 त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। वही, 20/108/2

परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करने का विधान किया गया है।[74] पारस्परिक सौहार्द्र की भावना से प्रेरित होकर समानता का भाव रखते हुए समाज में सभी सखा की भाँति जीवन-यापन करें।[75] वेद सामूहिक विकास की भावना में विश्वास रखता है।[76] अथर्ववेद कहता है कि इस लोक में पति और पत्नी सब प्रकार के ईर्ष्या, द्वेष आदि को भुलाकर सभी लोग आपस में मिलकर रहें।[77] प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप को सदा उत्तम बनाने का प्रयास करे[78], जिससे सम्पूर्ण समाज की उन्नति हो सके। कहीं भी किसी वर्गविशेष के ही उत्थान की बात नहीं की गई है, अपितु सर्वत्र मानवमात्र के कल्याण ही सन्निहित है। जब सभी मनुष्य समान हैं तो सभी के मानवीय अधिकार भी समान हैं। अतः अथर्ववेद समता का परिपोषक है।

ii. शिक्षा का अधिकार (Right of Education)-

मानव के व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षा एक अनिवार्य तत्त्व है। इसके अभाव में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास नहीं कर सकता। समाज में सभी व्यक्तिओं को सुखी जीवन का अधिकार है। इसके लिए अथर्ववेद ज्ञान को सर्वोपरि मानता है। ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति अपने स्वगत तथा परगत सभी कष्टों के निवारण में समर्थ हो पाता है[79] ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति हान और उपाय का सम्यक् निर्धारण करता है।[80] अथर्ववेद में कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा ही सुख-विनाशक द्वेष आदि विभिन्न वृत्तियों का नाश किया जा सकता है।[81] सभी मनुष्य जीवन के समस्त कार्य उचित-अनुचित का सम्यक् निर्धारण करके करें एतदर्थ राजा द्वारा सभी प्रजा के लिए शिक्षा का विधान किया गया है।[82] अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है कि मैं अपनी समस्त शक्ति को शिक्षा ग्रहण करने में लगाऊँ और आजीवन

---

[74] मा भ्राता॒ भ्रातरं॑ द्विक्ष॒न्मा स्वसा॑रमु॒त स्वसा॑। *अथर्ववेद*, 3/30/3, अ॒न्यो अ॒न्यम॒भि ह॑र्यत। वही, 3/30/1. अनु॑व्रतः पि॒तुः पु॒त्रो मा॒त्रा भ॑वतु॒ संम॑नाः। वही, 3/30/2.

[75] संम॑नसौ भू॒त्वा सखा॑यावि॒व॒ सचा॑वहै। वही, 6/42/1.

[76] व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम्। *अथर्ववेद*, 7/80/3.

[77] सम॑स्मिंल्लो॒के समु॑ देव॒याने॒ सं स्मा॒ स॒मेत॑ यम॒राज्ये॑षु। वही, 12/3/3.

[78] अ॒हं भू॑यासमु॒त्त॒मः। वही, 6/15/2.

[79] अ॒ना॒गस॒ं ब्रह्म॑णा त्वा कृणोमि शि॒वे ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे स्ता॑म्। वही, 2/10/1.

[80] सू॒र॑सि वर्चो॒धा अ॑सि तनू॒पानो॑ऽसि। आ॒प्नु॒हि श्रेयां॑स॒मति॒ स॒मं क्रा॑म॥ वही, 2/11/4.

[81] *अथर्ववेद*, 2/19/4, सिद्धान्तालंकार, हरिशरण, अथर्ववेदभाष्यम्, पृ० 120.

[82] आ द॑धामि ते प॒दं सम्मि॑द्धे जा॒तवे॑दसि। अ॒ग्निः शरी॑रं वेवे॒ष्टूवसु॒ वागपि॑ गच्छतु॥ वही, 2/12/8.

शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा वाला बनूँ।[83] राजा पृथिवी से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे पृथिवी माता! हमारी सारी प्रजाएँ सम्यक् प्रकार से ज्ञान- विज्ञान से सम्पन्न हों अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने में पूर्ण रुचि वाली हों, ताकि वे राजा के कार्यों का ठीक प्रकार से मूल्यांकन कर सकें।[84] राज्य में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित न रहे तदर्थ सम्पूर्ण प्रजा के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य बताया गया है।[85] यदि माता-पिता अपने बालक को किसी प्रकार की निर्धारित शिक्षा दिलाना चाहते हैं तो, बाल्यकाल से ही बालक का पालन-पोषण इस प्रकार से करना चाहिए ताकि मनोवाञ्छित शिक्षा के प्रति बालक में रुचि उत्पन्न हो सके। फिर भी किस बालक को क्या शिक्षा देनी है? इसका अन्तिम निर्धारण आचार्य को बालक अथवा बालिका के रुचि के आधार पर करना चाहिए। राजा और प्रजा सभी के बालक गुरुकुल में बिना किसी भेदभाव के एक साथ शिक्षा ग्रहण करें। बालक जब अध्ययनार्थ गुरुकुल जाता है तब आचार्य तीन दिन तक उसके आचार-व्यवहार का निरीक्षण करता है, उसकी अभिरुचि को जानने का प्रयास करता है। बालक की अभिरुचि का सम्यक् निर्धारण करके आचार्य उसका उपनयन संस्कार करके अपना शिष्य बनाता है।[86] शान्त तथा अध्ययनशील प्रवृत्ति वाले छात्रों को पठन-पाठन की शिक्षा, उग्र स्वभाव वाले छात्रों को शस्त्रादि कलाओं की शिक्षा, धन संग्रह आदि की रुचि वाले छात्रों को वाणिज्य की शिक्षा, शिल्प आदि में रुचि रखने वाले छात्रों को शिल्प विद्या की शिक्षा दी जाती है। कुछ शिक्षाएँ सामान्य होती हैं जिनका अध्ययन सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए। जैसे- नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, समाज में व्यक्ति के आचार-व्यवहार आदि की शिक्षा। शिक्षाओं में व्यक्ति के जीवन को सफल बनाने वाली विभिन्न शिक्षाओं का समायोजन होना चाहिए। इसके लिए सभी मनुष्यों को स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पण की शिक्षा दी जानी चाहिए। सम्पूर्ण शिक्षा की परिसमाप्ति के पश्चात् बालक का समावर्तन करना चाहिए। इस समय आचार्य बालक को उसके भावी जीवन के लिए विभिन्न प्रकार के उपदेश देता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में बालक के समावर्त्तन के समय आचार्य उपदेश देते हुए कहता है कि **"वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।..... देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव।**

---

[83] श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा। *अथर्ववेद*, 2/17/4 व्या. सिद्धान्तालंकार, हरिशरण

[84] ताः नः॑ प्र॒जाः सं दु॑हतां सम॒ग्रा वा॒चो मधु॑ पृथिवी धेहि॒ मह्य॑म्। वही, 12/1/16.

[85] सं दि॒व्येन॑ दीदिहि रोच॒नेन॒ विश्वा॒ आ भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः। *अथर्ववेद*, 2/6/1.

[86] आ॒चा॒र्य उप॒नय॑मानो ब्रह्मचा॒रिण॑ कृणुते॒ गर्भ॑म॒न्तः। तं रात्रीस्ति॒स्र उ॒दरे॑ बिभर्ति॒ तं जा॒तं द्रष्टु॑मभि॒संय॑न्ति दे॒वाः॥ वही, 11/5/3.

पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि"।[87] अथर्ववेद में उन्नति के सन्दर्भ में दो मार्गों का वर्णन किया गया है- सुपन्थ और कुपन्थ। कुपन्थ सदा उन्नति में बाधक होता है और सुपन्थ सहायक। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को कुपन्थ का परित्याग करके सुपन्थ पर चलने के लिए प्रेरित किया गया है।[88]

स्त्री शिक्षा (Woman Education)-

वेदों में सरस्वती को विद्या की अधिष्ठातृ देवी कहा गया है, जो एक स्त्री है।[89] उक्त मान्यता शिक्षा में स्त्री के प्रतिनिधित्व को दर्शाती है। एक स्थान पर स्त्री को विभिन्न शास्त्रार्थों में भाग लेने का वर्णन किया गया है।[90] इन्द्राणी को शिक्षा के साथ-साथ सेना के नेतृत्व का कार्य-भार भी दिया गया है। वह अजेय बनकर राज्य का उत्कर्ष करती है।[91] अथर्ववेद में कहा गया है कि जो स्त्री ज्ञान का विरोध करने वाली हो, उसको परिवार से सदा दूर रखना चाहिए।[92] इस प्रकार शिक्षा में स्त्रियों की पर्याप्त भागीदारी का संकेत किया गया है। परिवार में स्त्री का मूर्धन्य स्थान होता है, ये कभी भी विधवा न हों।[93] पारिवारिक कार्य-भार में स्त्री ही सबसे अधिक प्रभावशाली होती है। इसलिए शिक्षित स्त्री को ही अपने परिवार का सदस्य बनाना चाहिए। वेद पारिवारिक जीवन में स्त्री का इतना अधिक महत्त्व इसलिए स्वीकार करता है क्योंकि स्त्रियाँ उचित-अनुचित का सम्यक् विचार करके ही कोई निर्णय लेती हैं। उचित-अनुचित का सम्यक् निर्णय कर पाना तभी सम्भव है जब स्त्री शिक्षित हो। इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा ग्रहण करने का विधान है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी स्त्री शिक्षा के

---

[87] *तैत्तिरीयोपनिषद्*, 1/11/1-2.

[88] अनृहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्॥ अथर्ववेद, 5/30/7, मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानुगाः पितॄन् । विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु त्वेह॥ वही, 8/1/7॥, इस सूक्त के प्रायः सभी मन्त्र उपादेय हैं। 8/1/1-14.

[89] पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ *ऋग्वेद*, 6/61/17.

[90] वशिनी विदथमा वदासि । *अथर्ववेद*, 14/1/20.

[91] इन्द्राण्ये तु प्रथमाजीतामुषिता पुरः । वही, 1/27/4.

[92] निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे । वही, 2/14/2. मन्त्र की व्याख्या में सिद्धान्तालंकार, हरिशरण ने 'मगुन्द्या दुहितरः' का अर्थ ज्ञान जनित आनन्द को नष्ट करने वाली स्त्री किया है । *अथर्ववेदभाष्यम्*, पृ० 109.

[93] आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे । *अथर्ववेद*, 12/2/31.

अनेकों संकेत हैं।[94] अथर्ववेद के अनेक सूक्तों की द्रष्टा ऋषिकाएँ हैं। ऋषियों की भाँति ऋषिकाओं के भी तत्त्वबोधिनी होने के प्रमाण मिलते हैं। ऋषिकाओं का मन्त्र द्रष्टृत्व स्त्री शिक्षा का उद्घोष करता है। अथर्ववेद का ब्रह्मचर्यसूक्त[95] शिक्षा पर प्रकाश डालता है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब बालक अथवा बालिका आचार्य के समीप गुरुकुल जाते हैं, तब आचार्य उनका उपनयन संस्कार करके उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार शिक्षा देता है।[96] विद्यार्थी काल में प्रत्येक बालक और बालिका के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य होता है।[97] बालक और बालिकाओं के गुरुकुल अलग-अलग होने चाहिए। स्त्रियों को भी उनके रुचि के अनुसार शिक्षित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार अथर्ववेद में प्रजा के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य बताया गया है। स्त्री, पुरुष समेत सभी वर्णों के लिए उनके रुचि के अनुसार शिक्षा का प्रावधान है।

iii. विवाह सम्बन्धी अधिकार (Right to Marry)-

जीवन-यापन की शैली के विषय में अथर्ववेद में गहन चिन्तन हुआ है। आश्रम-चतुष्टय की संकल्पना अथर्ववेद में सन्निहित है। इसमें मानव-जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है 1. ब्रह्मचर्याश्रम 2. गृहस्थाश्रम 3. वानप्रस्थाश्रम और 4. संन्यासाश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त हो जाने के पश्चात् गृहस्थाश्रम में पहुँचकर युवक और युवती का विवाह होना चाहिए। विवाह प्रायः सौभाग्य के लिए किया जाता है।[98] अथर्ववेद में कहा गया है कि वर और वधू की इच्छा के अनुसार ही विवाह होना चाहिए

एयमगन्पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम्॥ [99]

अर्थात् युवावस्था में परस्पर एक-दूसरे के चाहने वालों का विवाह हो। इस प्रकार उक्त मन्त्र से यह स्पष्ट है कि विवाह को लेकर स्त्री पुरुष स्वतन्त्र हैं। बालक और बालिका यदि एक-दूसरे को चाहते हों तो

---

[94] पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । पत्न्यै व्रतोपनयनम्॥ *तैत्तिरीय ब्रह्मण*, 3/3, 3/2.

[95] *अथर्ववेद*, 11/5.

[96] आचार्य उपनयनमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ वही, 11/5/3.

[97] ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । वही, 11/5/18.

[98] गृह्णामि ते सौभगत्त्वाय हस्तं० वही, 5/17/2.

[99] वही, 2/30/5.

उनका विवाह हो जाना चाहिए। इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अपनी इच्छानुसार विवाह करने का अधिकार है। अथर्ववेद में विधवा-विवाह के भी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

इ॒यं नारी॑ पतिलो॒कं वृ॑णा॒ना नि प॑द्यत॒ उप॑ त्वा मर्त्य॒ प्रेत॑म्।
धर्मं॑ पुरा॒णमनु॑पा॒लय॑न्ती॒ तस्यै॑ प्र॒जां द्रवि॑णं चे॒ह धे॑हि॥ [100]

पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्री सन्तान की प्राप्ति तथा भावी जीवन के निर्वाह के लिए पुनः सुयोग्य व्यक्ति से विवाह कर सकती है। यदि विवाह के पश्चात् कोई दम्पत्ति एक-दूसरे के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है तो दोनों पारस्परिक सहमति से विवाह विच्छेद करके किसी अन्य से पुनः विवाह कर सकते हैं। पुनर्विवाह करने वाली स्त्री को अथर्ववेद में पुनर्भू कहा गया है।[101]

इस प्रकार विवाह के सम्बन्ध में अथर्ववेद व्यापक दृष्टिकोण रखता है। किसी भी स्त्री-पुरुष का विवाह परस्पर उनकी सहमति से ही होना चाहिए। विवाह के सम्बन्ध में दोनों के ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं बनाना चाहिए। विवाह के पश्चात् भी यदि पति-पत्नी के विचार आपस में नहीं मिलते हों तो दोनों आपसी सहमति से विवाह का विच्छेद करके पुनः किसी अन्य से विवाह कर सकते हैं। अतः अथर्ववेद के अनुसार विवाह के सम्बन्ध में सभी स्त्री और पुरुष स्वतन्त्र हैं।

iv. संगठन बनाने का अधिकार (Right to Make Unian)-

संगठन प्रायः समान विचारधारा वाले व्यक्तियों का एक समूह है, जो किसी एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। यद्यपि आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज में संगठन का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है तथापि वेदों में भी संगठन के महत्त्व का गुणगान किया गया है। अथर्ववेद में ऐसे अनेकों उद्धरण मिलते हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाज के कल्याण हेतु कोई भी व्यक्ति संगठन का निर्माण कर सकता है। संगठन आदि के माध्यम से मनुष्यों के अधिकारों की सुरक्षा भी की जाती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि विभिन्न प्रकार की शक्तियों की प्राप्ति के लिए

---

[100] *अथर्ववेद*, 18/3/1.

[101] स॒मा॒नलो॑को भवति पुनर्भुवापर॒ः पतिः॑। वही, 9/5/28.

संगठन एक महत्त्वपूर्ण साधन है।[102] निःस्वार्थभाव से संगठन में रहकर एक साथ मिलकर आत्मकल्याण के साथ-साथ जनकल्याणपूर्वक जीवन जीना ही मोक्षप्राप्ति का श्रेष्ठ व सरलतम मार्ग है।

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः॥ [103]

सभी को संगठन में एक साथ रहने का विधान करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि-

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन्दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्॥ [104]

अर्थात् यह संसार सागर अत्यन्त दुर्गम है। एक-दूसरे के साथ मिलकर तैयार हो जाओ। वीरतापूर्वक आचरण करो। मित्र बनकर एक-दूसरे का सहयोग करते हुए जीवन जीओ। समान मन वाले होकर मित्र बनकर एक साथ रहो।[105] समान विचार वालों के साथ तो मतैक्यता होनी ही चाहिए, जो विपरीत बुद्धि वाले हैं उनको भी सुपथ पर लाकर उनके साथ भी मतैक्य स्थापित करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संगठन में किसी प्रकार का विखण्डन न हो, इसका तो प्रयास करना ही चाहिए साथ ही साथ संगठन के विस्तार पर भी समुचित ध्यान देना चाहिए। इसके विषय में अथर्ववेद कहता है कि-

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥ [106]

सब लोग मिलकर एक साथ मन्त्ररूप स्तोत्रों से अपने इष्टदेव की उपासना करें क्योंकि इष्टदेव की प्राप्ति ही सबका लक्ष्य होता है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के मार्ग बताए गए हैं। प्रायः सभी मार्ग उसी परमात्मा तक ले जाते हैं। जब सबका लक्ष्य एक ही है तो सभी मनुष्य आपस में मिलकर एक-दूसरे की सहायता करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।[107] अथर्ववेद में संगठन को एक प्रकार का यज्ञ माना गया

---

[102] वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः । उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्नयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ॥ *अथर्ववेद*, 3/20/8.

[103] वही, 2/34/4.

[104] वही, 12/2/26.

[105] संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै । वही, 6/42/1.

[106] वही, 7/52/1, 1/15/2 भी सन्दर्भित है।

[107] समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूतिरतिथिर्जनानाम् । वही, 7/21/1.

है[108] तथा प्रत्येक व्यक्ति को संगठन के कार्यों में सहयोग करने के लिए कहा गया है।[109]

इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी संगठन को स्वीकार कर सकता है। यदि वह किसी भी संगठन से सहमति नहीं रखता हो तो उसको नवीन संगठन के निर्माण का अधिकार है। राजा उसके संगठन निर्माण के कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता है, बशर्ते उस संगठन का उद्देश्य समाज को हानि पहुँचाना न हो।

3. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom)-

समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता की अभिलाषा रखता है। पराधीनता में केवल दुःख ही मिलता है। भारतीय संविधान भी अपने सभी नागरिकों को स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के समुचित विकास के लिए स्वतन्त्रता एक आवश्यक अंग है, इसके अभाव में व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक आदि सभी प्रकार के विकास प्रायः अवरुद्ध हो जाते हैं। जहाँ स्वतन्त्रता व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है, वहीं स्वच्छन्दता अवरोधक। स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता में लेशमात्र ही अन्तर है। स्वतन्त्रता के अन्तर्गत व्यक्ति अपने द्वारा अपने लिए बनाए गए नियमों के अनुसार जीवन-यापन करता है। जिसमें उचित-अनुचित का सम्यक् विचार किया जाता है। स्वच्छन्दता सब प्रकार के नियमों से मुक्त होती है। इसमें व्यक्ति उचित-अनुचित का विचार किए बिना काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत होकर स्वेच्छानुरूप कार्यों में प्रवृत्त होता है। स्वच्छन्दता स्वयं के लिए तथा समाज के लिए घातक होती है क्योंकि इसमें अन्यों के हित-अहित की उपेक्षा सन्निहित होती है। भारतीय परम्परा में स्वतन्त्रता को जीव का स्वाभाविक धर्म माना गया है। इसके अनुसार प्रत्येक जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। सम्पूर्ण वैदिक दर्शन उक्त सिद्धान्त पर ही आश्रित है। यह अहिंसा का समर्थक है[110] क्योंकि अहिंसा से ही निर्भीकता आती है, जिसके लिए अथर्ववेद सदा निर्भीक होकर जीने का सन्देश देता है।[111] मन्त्र-

अभ॑यं मि॒त्रादभ॑यम॒मित्रादभ॑यं ज्ञा॒तादभ॑यं प॒रोक्षा॑त्।

---

[108] सं सं स्र॑वन्तु सिन्ध॑व॒: सं वाता॒: सं प॑त॒त्रिणः॑। इ॒मं य॒ज्ञं प्र॒दिवो॑ मे जुषन्तां संस्रा॒व्ये ण ह॒विषा॑ जुहोमि॥ *अथर्ववेद*, 1/15/1.

[109] इ॒न्द्र॒वा॒यू उ॒भावि॒ह सु॒हवे॒ह ह॑वामहे । यथा॑ न॒: सर्व॒ इज्जन॒: संग॑त्यां सु॒मना॒ अस॒दान॑कामश्च नो॑ भुवत्॥ वही, 3/20/6.

[110] मा नो॑ हिंसिष्टं द्वि॒पदो॒ मा चतु॑ष्पदः। वही, 11/2/1.

[111] मे॑ प्राण॒ मा बि॑भेः। वही, 2/15/1.

अभ॑यं॒ नक्त॒मभ॑यं॒ दिवा॑ न॒: सर्वा॒ आशा॒ मम॑ मि॒त्रं भ॑वन्तु॥ [112]

जो दूसरों को दास बनाता है और दूसरों का हनन करता है, अथर्ववेद में उसको शत्रु माना गया है तथा ऐसे शत्रु के विनाश का विधान किया गया है।[113] अथर्ववेद में उपलब्ध स्वतन्त्रता के अधिकार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

i. आजीविका की स्वतन्त्रता।

ii. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता।

i. आजीविका की स्वतन्त्रता (Right to Work)-

अथर्ववेद में सभी व्यक्तिओं को स्वेच्छानुरूप आजीविका को चुनने का अधिकार दिया गया है। चूँकि वर्ण का निर्धारण कर्म के आधार पर है इसलिए व्यक्ति के कर्म ही उसके वर्ण के निर्धारक होते हैं। अथर्ववेद में कृषि को आजीविका का एक उत्तम साधन माना गया है। सम्पूर्ण प्रजा का नियन्त्रक होते हुए राजा द्वारा भी कृषि-कार्य करने का विधान किया गया है।[114] इसमें कृषि को सुख-प्राप्ति का एक साधन बताया गया है।[115] कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से कृषि-कार्य को अपना सकता है। तत्कालीन समय के प्रमुख व्यवसायों में पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। अथर्ववेद में राजा के द्वारा यह प्रार्थना की गई है कि प्रत्येक घर में दूध और घी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो।[116] इससे यह स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद में प्रायः सभी मनुष्यों को पशुपालन का अधिकार दिया गया है। यह अधिकार भी सभी लोगों के लिए समान है।[117] अन्य व्यवसायों में बढ़ईगीरी(तक्षा)[118], लौहकर्म(कर्मार)[119], सुवर्णकर्म, नापितकर्म, बुनकरी, सूचीकर्म, वैद्यकर्म आदि विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का वर्णन मिलता है।

---

[112] *अथर्ववेद*,, 19/15/6.

[113] यो नो॒ द्वेष॑त्पृथिवि॒ यः पृ॑त॒न्याद्योऽभि॒दासा॒न्मनसा॒ यो व॒धेन॑। तं नो॑ भूमि रन्धय पूर्वकृत्वरि। वही, 12/1/14.

[114] इन्द्र॒: सीता॑ नि गृ॑ह्णातु॒ तां पू॒षाभि र॑क्षतु। वही, 3/17/4.

[115] सीरा॒ युञ्जन्ति क॒वयो॑ यु॒गा वि॑ तन्वते॒ पृथ॑क्। धीरा॑ दे॒वेषु॑ सुम्न॒यौ॥ वही, 3/17/1.

[116] सं सि॑ञ्चामि॒ गवा॑ क्षी॒रं समाज्ये॑न॒ बल॑ं रस॑म्। वही, 2/26/4.

[117] सं सं स्र॑वन्तु प॒शव॒: समश्वा॒: सम॒ पूरु॑षाः। वही, 2/26/3.

[118] तक्षा॒ हस्ते॑न॒ वास्या॑:, वही, 10/6/3.

[119] ये धीवा॑नो रथका॒राः क॒र्मार॒ा ये म॑नी॒षिणः॑। उ॒पस्तीर्प॑र्ण॒ मह्यं॒ त्वं सर्वा॑न्कृण्व॒भितो॒ जना॑न्॥ वही, 3/5/6.

ii. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (Right to Speech)-

अभिव्यक्ति का अधिकार एक ऐसा अधिकार है, जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति को अपना मत स्पष्ट रूप से रखने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र में कहा गया है कि -"प्रत्येक व्यक्ति को विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार है, इस अधिकार के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बिना विचार रखने तथा किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किए बिना जानकारी माँगने, प्राप्त करने तथा देने की स्वतन्त्रता है"[120] भारतीय संविधान में 19 (1) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को स्थान दिया गया है।[121] साथ ही साथ 19(2) में यह भी कहा गया है कि राज्य की सुरक्षा, विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार और सदाचार, न्यायालय की अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए प्रोत्साहन और भारत की संप्रभुता तथा अखण्डता पर आघात की स्थिति में न्यायालय द्वारा सीमाएँ या प्रतिबन्ध आरोपित किए जा सकते हैं।[122] भारतीय समाज में यह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता वैदिककाल से ही विद्यमान रही है। सभी मनुष्यों को वेदादि शास्त्रों की तार्किक व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है। उक्त अधिकार के परिणामस्वरूप यद्यपि कहीं-कहीं अर्थ का अनर्थ भी हुआ है तथापि यह स्वतन्त्रता जनमानस के पास थी। तभी तो जहाँ एक तरफ सांख्य-योग और वेदान्त जैसे आस्तिक दार्शनिक सम्प्रदाय हैं, वहीं दूसरी ओर बौद्ध, चार्वाक और जैन जैसे नास्तिक[123] दार्शनिक सम्प्रदाय भी विकसित हुए हैं। लोग अपनी मान्यताओं के लिए भी स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं क्योंकि तत्कालीन समाज में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद आदि विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं। उक्त सभी प्रवर्तक इस संसार को अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित करते हैं। भारत में इतनी बड़ी ज्ञान परम्परा समृद्ध हो सकी, यह सब अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के परिणामस्वरूप ही सम्भव हो सका है। वेदों में अनेकों ऐसे संवाद सूक्त उपलब्ध होते हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष आदि सभी को अपना मत रखने का अधिकार दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद के यम-यमी[124] सूक्त में एक स्त्री अपने सहोदर

---

[120] मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, उद्देशिका, अनुच्छेद-19. उद्धृत, श्रवण कुमार सैनी, *मानवाधिकार विधियाँ,* पृ०310.

[121] अनुच्छेद, 19(1).

[122] सुभाष कश्यप, *हमारा संविधान*, पृ०97.

[123] नास्तिको वेदनिन्दकः। *मनुस्मृति,* 2/11.

[124] *ऋग्वेद,* 10/10.

भाई से विवाह की इच्छा अभिव्यक्त करती है, जो सर्वथा समाज के प्रतिकूल है। यह घटना अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को ही द्योतित करती है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को लेकर वेदों का अपना दृष्टिकोण है। वह लोक कल्याण को ध्यान में रखते हुए ही अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का पक्षधर है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को परिभाषित करते हुए अथर्ववेद कहता है कि-

1. सभी व्यक्ति बोलने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ऐसी वाणी न बोलें जिससे द्रोह होता हो, अपितु ऐसी वाणी बोलें जो दूसरों के मन को आकर्षित करे।[125] वास्तव में यह परिभाषा अत्यन्त सटीक और सारगर्भित है। व्यक्ति को उसी प्रकार के अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है, जिसमें किसी का अकल्याण निहित न हो, किसी का अपमान न किया गया हो, किसी की भावना आहत न हो। यदि ऐसा कुछ होता है तो वह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की सीमा में नहीं आएगा।

2. प्रत्येक व्यक्ति को एक-दूसरे से मधुर वार्त्तालाप ही करना चाहिए।[126]

3. परस्पर व्यवहार इस प्रकार का हो जिससे किसी से द्रोह न हो अपितु शान्ति स्थापित हो सके।[127] अन्यदपि उसी प्रकार की वाणी बोले जिससे द्रोह न हो।[128] परस्पर हमारे हृदय समान हों और हम मित्र बनकर रहें।[129] पारस्परिक वैरभाव से नाश और पतन होता है।

अतः उपर्युक्त मन्त्रांशों में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वैदिक कालीन समाज में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता थी परन्तु उसकी भी अपनी एक सीमा थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार रखने में स्वतन्त्र था परन्तु ऐसी अभिव्यक्ति पर सर्वथा प्रतिबन्ध था, जिसमें किसी के अहित की भावना सन्निहित हो। यहाँ अहित शब्द से तात्पर्य मौलिक अधिकारों के हनन से है। वैदिक काल में स्त्रियाँ भी अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बताई गई है। वेद में अनेकों ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट सूक्त हैं, जिनसे स्त्रियों की अभिव्यक्ति ही परिलक्षित होती है। घर में तो उनका एकाधिकार था ही समय-समय पर सभाओं आदि

---

[125] प्र वंदासि वल्गु। *अथर्ववेद*, 12/3/18 .

[126] वाचा वंदामि मधुमद्भूयासं मधुसन्दृशः। वही, 1/34/3.

[127] अद्रोघंवाचं सुशेवंम्, वही, 6/1/2.

[128] सखायोऽद्रोघांविता वाचमच्छं। वही, 11/1/2.

[129] संमंनसौ भूत्वा सखांयाविव सचांवहै। वही, 6/42/1.

का भी प्रतिनिधित्व करती थीं।[130] इस प्रकार वेदों में अभिव्यक्ति के विभिन्न पक्षों पर गूढ़ता से चिन्तन हुआ है।

4. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)-

शोषण के अन्तर्गत मनमाने तरीके से किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिए विवश किया जाता है। अथर्ववेद में शोषण का सर्वथा प्रतिषेध है। अथर्ववेद में दासप्रथा का सर्वथा निषेध किया गया है, जो व्यक्ति किसी को दास बनाने का प्रयास करता है, उसको समाज का शत्रु माना गया है। ऐसे शत्रुओं का विनाश कर राजा द्वारा इस प्रकार के कृत्यों पर अंकुश लगाने का विधान है।[131] यदि कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से किसी के वस्तु की चोरी करता था तो राजा द्वारा अपराधी को मृत्युदण्ड अथवा हाथ-पैर कटवाने का विधान किया गया है।[132] राजा को शासन व्यवस्था इतनी सुदृढ़ बनानी चाहिए कि कोई भी दुराचारी किसी पर मनमाने तरीके से अत्याचार न कर सके तथा किसी व्यक्ति का शोषण न हो।-

योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चिराकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा॥ [133]

अर्थात् जो कोई व्यक्ति अहित की भावना से प्रेरित होकर हमें दास बनाने के विषय में मन, वचन, कर्म से किसी प्रकार का प्रयत्न करता हो, हे जनों में अग्रणी राजन्! आप उसका सर्वनाश कीजिए। अथर्ववेद में पृथिवी से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि भूमि पर चारो दिशाओं में विचरण करते हुए हम किसी प्रकार से पीड़ित न हों-

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ [134]

---

[130] अहं वदामि नेत्वं सभायामह त्वं वद। *अथर्ववेद*, 7/38/4.

[131] वही, 4/40/1-8.

[132] प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत्। यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टौ अपायति। अपायति स्वपायतिशुष्के स्थाणावपायति॥ वही, 19/49/10.

[133] वही, 5/6/10.

[134] वही, 12/1/28.

प्रजा में परस्पर सौहार्द्र हो तथा समय आने पर सभी एक-दूसरे की सहायता करें। अथर्ववेद के अनुसार प्राणिमात्र के अधिकारों की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। किसी के अधिकारों का हनन करना उसका शोषण है। इसलिए कहा गया है कि मन, वचन और कर्म से हमें किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। अथर्ववेद धृष्टता, लालच, पिशुनता, चोरी आदि को शोषण और हिंसा का प्रमुख कारण मानता है। इसलिए सदा इनसे बचने के लिए प्रेरित करता है, ये सभी के सभी मानवता के विध्वंसक हैं, अतः इनका परित्याग परमावश्यक है। मन्त्र-

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥ [135]

यदि कोई व्यक्ति मनमाने तरीके से किसी के अधिकारों का हनन करता है या करने का प्रयास करता है तो अथर्ववेद में शोषित व्यक्ति को उक्त कार्य का विरोध करने के अधिकार दिया गया है और वह न्याय के लिए राजा के समक्ष प्रस्तुत हो सकता है।

5. धार्मिक अधिकार (Dharmik Rights)-

अथर्ववेद में प्रायः दो प्रकार की मान्यताओं का उल्लेख हुआ है- 1. जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते उन्हें देवनिन्दक अर्थात् नास्तिक कहा गया है।[136] तथा 2. जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हैं, वे देवभक्त अर्थात् आस्तिक कहे जाते हैं।[137] अथर्ववेद नास्तिकों के विनाश की बात करता है क्योंकि नास्तिक जन अन्य जनों के लिए कष्टकर होते हैं।[138]

यज्ञ- कार्य सभी के लिए अनिवार्य बताया गया है। जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता है वह निस्तेज हो जाता है।[139] संसार-सागर से पार करने के लिए यज्ञ को नौका माना गया है और कहा गया है कि जो यज्ञ रूपी नौका पर नहीं चढ़ते, वे सदा दुःख में रहते हैं।[140] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अथर्ववेद सभी को यज्ञ करने का अधिकार देता है। प्रातः और सायं दोनों समय यज्ञ करने से मनुष्यों में पारस्परिक सद्भाव की

---

[135] *अथर्ववेद*, 8/4/22.

[136] अव ब्रह्मद्विषो जहि। वही, 20/93/1.

[137] श्रद स्मै धत्त। वही, 20/34/5.

[138] ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसन्तपाति। वही, 2/12/6.

[139] अयज्ञियो हतवर्चा भवति। वही, 12/2/37.

[140] न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहम्०। वही, 20/94/6.

वृद्धि होती है।[141] अथर्ववेद में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। माता, पिता, गुरु, आचार्यों, अतिथियों तथा अपने से बड़ों का सत्कार करना यज्ञ बताया गया है।[142] इसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, माधुर्य आदि का विस्तृत वर्णन है। इसको अपनाने में ही जीवन का कल्याण बताया गया है।[143]

अथर्ववेद में जनमानस के धार्मिक अधिकारों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। सभी व्यक्ति को धर्म के परिपालन का अधिकार है। उक्त वेद में विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं का वर्णन प्राप्त होता है। कोई भी व्यक्ति किसी भी देवता को अपना आराध्य देव मानकर उसकी उपासना कर सकता है। इस प्रकार धार्मिक विश्वास की दृष्टि से सभी स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं।

6. राजनैतिक अधिकार (Political Rights)-

अथर्ववेद में राजा और प्रजा के विभिन्न अधिकारों और कर्त्तव्यों का उल्लेख है। राजनैतिक अधिकार परस्पर सापेक्षिक अधिकार हैं। इसमें प्रजा को राजा से अधिकार मिलते हैं तथा राजा को प्रजा से अधिकार मिलते हैं। समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजनैतिक अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकार होते हैं। कुशल शासन के लिए राजा अपने कर्त्तव्यों को अनेक भागों में विभाजित करता है तथा प्रत्येक विभाग के लिए एक प्रतिनिधि का चुनाव करता है। कार्य के आधार पर राजा द्वारा उसको कुछ अधिकार दिए जाते हैं, जिनके माध्यम से प्रतिनिधि अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। अथर्ववेद में भी ग्राम, ग्रामणी, अमात्य, सभासद् आदि विभिन्न प्रतिनिधियों का वर्णन उपलब्ध होता है। प्रजा भी अपने प्रतिनिधि के रूप में विभिन्न जन-नायकों का चुनाव करती है। ये ही जननायक प्रजा की समस्याओं को राजा तक पहुँचाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रजा सीधे राजा से भी मिल सकती है। राजनीतिक दृष्टि से समाज का विभाजन राजा और प्रजा के रूप में दो भागों में किया जाता है। राजनैतिक अधिकार के अन्तर्गत राजा और प्रजा के अधिकारों का विवेचन किया जाता है। अथर्ववेद में प्रायः

---

[141] प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥ *अथर्ववेद*, 19/55/4.

[142] देवाः पितरः पितरो देवाः यो अस्मि सो अस्मि। वही, 6/123/3.

[143] अद्रोघवाचं सुशेवम्, वही, 6/1/2, निर्दुर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक्, वही, 16/2/1.

राजा के कर्त्तव्यों तथा प्रजा के अधिकारों और कर्त्तव्यों का विवेचन हुआ है। अथर्ववेद में वर्णित राजनैतिक अधिकार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. राजा के अधिकार (Rights of King)
2. प्रजा के अधिकार (Rights of People)

1. राजा के अधिकार (Rights of King)-

इसके अन्तर्गत राजा को प्रजा से विभिन्न प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में प्रजा द्वारा राजा को न्याय सम्बन्धी निर्णय लेने का अधिकार, अपराधी को दण्ड देने का अधिकार, कर प्राप्त करने का अधिकार आदि विभिन्न अधिकारों को प्रदान करने का विधान किया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रजा से उसकी आय का 1/16 वाँ भाग कर के रूप में लेना चाहिए-

यद्राजा विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।
अविस्तस्मात्प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात्स्वधा॥ [144]

कर का निर्धारण प्रायः प्रजा के प्रतिनिधि द्वारा ही किया जाना चाहिए। यह कर-व्यवस्था सभी के लिए समान रूप से लागू करने का प्रावधान है। जिस प्रकार अन्य सभी प्रजाएँ कर दिया करती हैं उसी प्रकार राजपरिवार को भी कर देने का उल्लेख मिलता है।[145]

राजा के उक्त अधिकारों पर नियन्त्रण रखने हेतु प्रजा को समानता, निष्पक्षता आदि अधिकार प्राप्त कराए गए हैं, ताकि राजा मनमाने तरीके से निर्णय आदि का विधान न कर सके। यदि राजा का निर्णय उचित न प्रतीत हो तो प्रजा को विरोध प्रकट करने का अधिकार बताया गया है।

2. प्रजा के अधिकार (Rights of People)-

कुछ अधिकार राजा द्वारा सम्पूर्ण प्रजा को दिए जाते हैं, जो प्रजा के अधिकार कहलाते हैं। प्रजा के राजनैतिक अधिकारों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

i. राजा चुनने का अधिकार (Right to Elect of King)

---

[144] *अथर्ववेद*, 3/29/1.

[145] अग्ने॒ सह॑स्वानभि॒भूर॒भीद॑सि॒ नीचो॒ न्यु ब्ज द्विष॒तः सपत्ना॑न्। इ॒यं मात्रा॑ मी॒यमा॑ना मि॒ता च॑ सजा॒तांस्ते॑ बलि॒हृतः॑ कृणोतु॥ वही, 11/1/6.

ii. राजा बनने का अधिकार (Right to Be King)

iii. सुरक्षा पाने का अधिकार (Right to get Siquerity)

iv. काम पाने का अधिकार(Right to get work)

i. राजा चुनने का अधिकार (Right to Elect of King)-

राष्ट्र की सुरक्षा, सुख, समृद्धि और शान्ति के लिए तथा सभी के अधिकारों की सुरक्षा हेतु एक कुशल शासक की आवश्यकता होती है। राज्य में किसी प्रकार की अराजकता न उत्पन्न होने पाए शासक इसका ध्यान रखता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रजा को राजा चुनने का अधिकार है परन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से राजा का चुनाव नहीं करती है। प्रजा विभिन्न समितियों में बँटी होती है। सभी समितियों के अध्यक्ष मिलकर राजा का चुनाव करते हैं। इस प्रकार प्रजा अप्रत्यक्षरूप से राजा का चुनाव करती है। वह उसी व्यक्ति को राजा चुन सकती है, जो राजोचित गुणों से युक्त हो। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

त्वां विशो वृणतां राज्या य त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि॥ [146]

उक्त मन्त्र में प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि प्रजाएँ तुझे राजा के रूप में वरण करें। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में प्रजा को राजा चुनने का अधिकार दिया गया है। वहीं पर एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि धनवान्, निर्धन, विभिन्न रूपों वाली, कर्मठ, अकर्मण्य सभी प्रकार की प्रजाएँ राजा के चुनाव में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करें। अर्थात् सभी मिलकर राजा का चुनाव करें-

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन्।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह॥ [147]

एक अन्य मन्त्र में भी प्रजा द्वारा राजा के चुनाव की बात कही गई है -

आ त्वा गन्राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह॥ [148]

---

[146] *अथर्ववेद*, 3/4/2.

[147] वही, 3/4/7.

[148] वही, 3/4/1.

यदि राजा के शत्रु लोग उसके विरुद्ध षड्यन्त्र आदि के द्वारा दोषी सिद्ध कर राजगद्दी से च्युत करवा दें तो सच्चाई से अवगत होकर प्रजा द्वारा पुनः च्युत राजा को राजा के रूप में स्वीकार करने का वर्णन प्राप्त होता है। यदि राजा राज-कार्य ठीक प्रकार से नहीं चला पा रहा है अथवा अपने कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से निर्वहन करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है तो प्रजा को यह अधिकार दिया गया है कि सर्वसम्मति से राजा को राजसिंहासन से उतार दे।

इस प्रकार राजा के चुनाव में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप में प्रजा की स्पष्ट भागेदारी होती थी। प्रजा को यह अधिकार था कि वह आवश्यकता पड़ने पर वह राजा का अपसरण भी कर सकती थी। इसलिए प्रायः सभी राजा प्रजा को प्रसन्न करने का सतत प्रयास करते थे। प्रजा तभी प्रसन्न होती थी, जब वह विभिन्न प्रकार के मौलिक सुख- सुविधाओं से सम्पन्न हो।

ii. राजा बनने का अधिकार (Right to Be King)-

प्रजा अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजा चुन सकती है परन्तु राजा उसी व्यक्ति को चुना जा सकता है, जो राजोचित आवश्यक गुणों से युक्त हो। अथर्ववेद में राजा बनने के लिए आवश्यक गुणों को बताते हुए कहा गया है कि प्रजा अत्यन्त विचारपूर्वक ही राजा का चुनाव करे। जो स्थाई रूप से शासन चला सके[149] जितेन्द्रिय हो, बलवान् हो तथा तेज, ओज आदि राजोचित गुणों से सम्पन्न हो, जिसमें किसी प्रकार की विलासिता न हो, जो सदाचारी तथा विभिन्न विद्याओं में निष्णात हो, जो दुष्टों को दण्ड देने में समर्थ हो तथा जिसमें किसी प्रकार का लालच न हो, प्रजा को चाहिए कि वह ऐसे ही व्यक्ति को राजा चुने।

याप॑ स॒र्पं वि॒जमा॑ना वि॒मृग्व॑री॒ यस्या॒मास॑न्न॒ग्नयो॒ ये अ॒प्सुन्तः।
पर॒ा दस्यू॒न्दद॑ती देवपी॒यूनिन्द्र॑ं वृणा॒ना पृ॑थि॒वी न वृ॒त्रम्।
श॒क्राय॑ दध्रे वृष॒भाय॒ वृष्ण॑े॥ [150]

[149] रा॒ष्ट्रं धा॑रयतां ध्रु॒वम्, *अथर्ववेद*, 6/88/2. ध्रु॒वोऽच्यु॑तः॒ प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑ञ्छात्र॒यतोऽध॑रान्पादयस्व। सर्वा॒ दिश॒ः संम॑नसः स॒ध्रीची॑र्ध्रु॒वाय॑ ते॒ समि॑तिः कल्पताम॒िह॥ वही, 6/88/3.

[150] वही, 12/1/37.

राजा बनने के लिए क्षात्र धर्म और ऐश्वर्य इन दो गुणों का होना अनिवार्य बताया गया है।[151] राजा युद्धकला में निपुण और ऐश्वर्यशाली होना चाहिए ताकि अपराधियों को दण्ड देने तथा प्रजा के लिए अन्न, जल आदि का समुचित प्रबन्ध करने में समर्थ हो सके। प्रजा के हित में ही राजा का कल्याण निहित होता है। राजा का यह कर्त्तव्य है कि अपनी प्रजा को अन्न, जल आदि उपभोग की मूलभूत वस्तुएँ उपलब्ध कराए।[152]

iii. सुरक्षा पाने का अधिकार (Right to get Siquerity)-

अथर्ववेद में प्रजा को राजा से सब प्रकार की सुरक्षा पाने का अधिकार दिया गया है। सभी नागरिकों के जीवन की सुरक्षा का दायित्व राजा का होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रजा उसी व्यक्ति को राजा चुने जो प्रजा के सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करने में समर्थ हो।[153] राजा प्रजा के सभी शत्रुओं का विनाश करे-

व॒यं ज॑येम॒ त्वया॑ यु॒जा वृत॑म॒स्माक॒मंश॒मुद॑वा भरे॑भरे ।
अ॒स्मभ्य॒मिन्द्र॒ वरी॑यः सु॒गं कृ॑धि॒ प्र शत्रू॑णां मघव॒न् वृष्ण्या॑ रुज ॥ [154]

राजा इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करे, जिसमें प्रजा को किसी प्रकार का अवाञ्छित भय न हो, वह सर्वथा निर्भीक होकर समाज में अपने व्यक्तित्त्व का विकास कर सके। सभी को एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति हो, किसी के मन में किसी के प्रति कोई द्वेष न हो। सभी लोग परस्पर इस प्रकार प्रेमपूर्वक रहें। अधिकांश विवाद मौलिक आवश्यकताओं के अभाव के कारण ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए राजा सभी प्रजा को मूलभूत आवश्यकताएँ जैसे- अन्न, जल, आवास आदि की व्यवस्था करे, जिससे सभी प्रजा सुखी रहे, समाज से कलहों का निवारण हो सके और कोई किसी से भयभीत न रहे।[155] व्यक्ति का आत्मबल इतना समुन्नत होना चाहिए कि किसी प्रकार का भय उसके विकास में बाधा न बन सके।

---

[151] अ॒स्मै क्ष॒त्रमं॑नीषोमाव॒स्मै धा॑रयतं र॒यिम् । इ॒मं राष्ट्र॒स्याभी॑व॒र्गे कृ॑णुतं यु॒ज उत्त॑रम्॥ *अथर्ववेद*, 6/54/2.

[152] इन्द्रे॒ण द॒त्तो वरु॑णेन शि॒ष्टो म॒रुद्भि॑रु॒ग्रः प्रहि॑तो न॒ आग॑न् । ए॒ष वां॑ द्यावामृथिवी उ॒पस्थे॒ मा क्षु॑धन्मा तृ॑षत्॥ वही, 2/29/4.

[153] वही, 3/4/5 का भाष्य करते हुए सिद्धान्तालंकार, हरिशरण ने 'वरुण' का अर्थ 'सब कष्टों का निवारण करने वाला' अर्थात् राजा अर्थ किया है। *अथर्ववेदभाष्यम्*, पृ० 164.

[154] वही, 7/50/4

[155] उप॑हूता॒ भूरि॑धना॒: सखा॑यः स्वा॒दुसं॑मुदः । अ॒क्षु॒ध्या अ॑तृ॒ष्या स्त॒ गृहा॒ मास्मद् बि॑भीतना॥ वही, 7/60/4.

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा से जीवन धारण करने के लिए मूलभूत सुविधाओं अन्न, जल आदि प्राप्त करना प्रजा का अधिकार है।

iv. काम पाने का अधिकार (Right to get work) -

समाज में किसी प्रकार की बेकारी या बेगारी की समस्या न हो, सभी प्रजाओं का जीवन-यापन ठीक प्रकार से हो सके, प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार के पालन-पोषण में समर्थ हो सके इसके लिए सम्पूर्ण प्रजा को राजा से समान रूप से कार्य पाने के अधिकार का सङ्केत दिया गया है। राजा अपनी प्रजा से कहता है कि हे मनुष्यों ! तुम्हारा दुग्धादि पदार्थों का पान समान हो, तुम्हारा भोजन एक जैसा हो और साथ-साथ हो अर्थात् तुम्हारा खान-पान एक जैसा हो, उसमें किसी प्रकार का भेदभाव न हो। प्रेमपूर्वक सब एक साथ मिलकर खाओ-पीओ, भले ही तुम्हारे पात्र पृथक्-पृथक् हों। इसके लिए मैं तुम्हारे लिए समान रूप से कार्यों का विभाजन करता हूँ।-

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। [156]

पुनः राजा कहता है कि मैं सबको समान रूप से एक साथ कार्यों में लगाता हूँ, जिससे तुम्हारे घर में किसी प्रकार के अन्न, जल आदि की कमी न हो।-

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु।। [157]

अतः अथर्ववेद में राजनीतिक अधिकारों के अनेकों सङ्केत मिलते हैं। प्रजा को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार राजा का चुनाव कर सके। राजा का चुनाव किसी वंश परम्परा आदि पर आधारित नहीं होना चाहिए। प्रजा अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को राजा चुन सकती है परन्तु राजा वही व्यक्ति बन सकता है, जो राज कार्य में समर्थ हो। जन-सामान्य को भी राजा बनने का पूर्ण अधिकार है। आधुनिक समाज में भी अधिकतर देशों में यही परम्परा विद्यमान है। इस प्रकार लोकतन्त्र का प्रारम्भ अथर्ववेद में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

---

[156] *अथर्ववेद*, 3/30/6.

[157] वही, 3/30/7.

7. आर्थिक अधिकार (Economical Rights)-

आर्थिक अधिकार के अन्तर्गत प्रायः सम्पत्ति के अधिकार की चर्चा की जाती है। चल और अचल के विभाग से सम्पत्ति दो प्रकार की होती है। चूँकि अथर्ववेद के अनुसार समाज में व्यवसाय की स्वतन्त्रता है, इसलिए सभी व्यक्तिओं को अपने पास सम्पत्ति रखने का अधिकार है। राजा का यह कर्त्तव्य होता है कि प्रजा में सम्पत्ति के समान विभाग की व्यवस्था करे। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि "**सखा॑यः कु॒लपा न व्रा॑ज॒पतिं चर॑न्तम्**"[158] अर्थात् पुत्र कुलप होता है, वह सब प्रकार से पिता के कुल की रक्षा करता है। इससे यह स्पष्ट है कि पुत्र कुल की मर्यादा के साथ-साथ पिता की सम्पत्ति का भी रक्षक होता है। अतः पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार है, उक्त मन्त्र से यह तथ्य स्पष्ट है। विभिन्न प्रकार के व्यवसाय को अपनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र होना चाहिए, ताकि वह अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी व्यवसाय को चुन सके।

8. सांस्कृतिक अधिकार (Cultural Rights)-

संस्कृति को परिभाषित करते हुए रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि जीवन-यापन की विविध शैली ही संस्कृति है।[159] मङ्गलदेव शास्त्री कहते हैं कि सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से सम्प्रेरक मार्गों को संस्कृति कहते हैं।[160] सांस्कृतिक अधिकार में प्रायः समाज तथा व्यक्तियों के आवास एवं रहन-सहन की चर्चा की जाती है। सांस्कृतिक दृष्टि से अथर्ववेद अन्य तीनों वेदों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेदीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों का विशेष रूप से संयोजन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि का पालन प्रत्येक मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य बताया गया है। देवताओं की उपासना, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन का सभी को अधिकार दिया गया है। सामाजिक समरसता का सर्वथा परिपोषण किया गया है। अथर्ववेद परिवार को समाज की मौलिक इकाई मानता है अतः पारिवारिक सामञ्जस्य का विशेष उपालम्भ किया गया है।[161] पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालक हो।[162] इसमें प्राकृतिक शक्तियों

---

[158] *अथर्ववेद*, 7/72/2.

[159] *संस्कृति के चार अध्याय*, प्रथम संस्करण, पृ० 653.

[160] उद्धृत, *अथर्ववेद एवं स्मार्तसंस्कृति*, प्रास्ताविकम्, पृ०10.

[161] मा भ्रा॒ता॒ भ्रातरं॑ द्विक्षु॒न्मा स्वसा॑रमुत स्वसा॑। *अथर्ववेद*, 3/30/3. अ॒न्यो अ॒न्यम॒भि हर्यत। *वही*, 3/30/1.

[162] अनु॑व्रतः पि॒तुः पु॒त्रो मा॒त्रा भ॑वतु॒ संम॑नाः। वही, 3/30/2.

अग्नि, वायु, आदित्य, जल, नदियों, वर्षा आदि को देवता मानकर उनकी पूजा का विधान किया गया है। नदी, कूप, तालाब आदि से सभी लोग समान रूप से जल भरते थे। सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्य को अपना धर्म समझते थे। भूमि को माता की संज्ञा दी गई है तथा सभी मनुष्यों को उसकी सन्तान कहा गया है।[163] इसमें अतिथि के सत्कार का विशेष अनुबन्ध है।[164] इस प्रकार अथर्ववेद में एक ही संस्कृति प्रचलित थी, प्रत्येक मनुष्य उसी के अनुसार अपना जीवन-यापन करता था।

9. स्त्रियों के अधिकार (Woman Rights)

अथर्ववेद में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी विभिन्न अधिकार दिए गए हैं। सामान्य रूप से जो अधिकार पुरुषों को दिए गए हैं वे सभी अधिकार स्त्रियों के लिए भी समान हैं। अथर्ववेद में स्त्रियों को शिक्षा, जीवन, अभिव्यक्ति, समानता आदि के लिए समान रूप से अधिकारिणी बताया गया है। दण्डादि विधान के लिए भी किसी प्रकार की असमानता का निषेध किया गया है।[165] अथर्ववेद में गृह्यकार्य स्त्री का प्रधान कर्त्तव्य बताया गया है[166] तथा स्त्रियों पर भी परिवार के भरण-पोषण का दायित्व का सामर्थ है, इसके लिए कहा गया है कि पाक आदि कार्यों में किसी प्रकार का विलम्ब न हो इसलिए शाम के समय स्त्री को अपने कार्य से शीघ्र ही घर लौट आना चाहिए।[167] अतः अथर्ववेद में स्त्रियों को घर से बाहर जाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान किया गया है। अथर्ववेद में स्त्रीयों को व्यापार आदि का अधिकार दिया गया है। स्त्रियाँ प्रायः सिलाई, कढाई, बुनाई, वस्त्रनिर्माण आदि का कार्य करके व्यापार में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने का वर्णन प्राप्त होता है।[168] यज्ञादि विभिन्न कर्मों के सम्पादन के लिए स्त्रियाँ समान रूप से अधिकारिणी बताई गई हैं। उनके लिए कहा गया है कि वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षाओं को जानकर उन पर सम्यक् आचरण करो।[169] इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियाँ भी शिक्षा ग्रहण करती थीं। अथर्ववेद में स्त्रियों के लिए अनश्रवः, अनमीवाः, सुरत्नाः, सुपत्नी आदि शब्द का प्रयोग

---

[163] माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। *अथर्ववेद*, 12/1/12.

[164] वही, 9/6/1-62.

[165] यदि स्त्री यदि वा पुमान्कृत्यां चकार पाप्मने। तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या॥ वही, 5/14/6.

[166] त्वं सम्राज्ञ्येधि पतुरस्तं परेत्य। वही, 14/1/43.

[167] परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यक्षुद्रराय। वही, 11/1/13.

[168] ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः। वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्न स्योनमुप स्पृशात्॥ वही, 14/2/51.

[169] ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः। अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु॥ वही, 11/1/15.

किया गया है।[170] कहा गया है कि इनको किसी प्रकार का दुःख नहीं होना चाहिए। प्रत्येक पति का यह कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नी की सभी इच्छाओं की पूर्ति करे।[171] कहा गया है कि कन्या सरल स्वभाव वाली होती है तो पति के घर में जाकर किसी प्रकार का दुःख नहीं सहन करती है।[172] पति से सभी प्रकार की रक्षा की प्राप्ति स्त्रियों के प्रमुख अधिकारों में से एक है।

इस प्रकार अथर्ववेद में विभिन्न मानवाधिकारों का व्यापक सन्निवेश हुआ है। आधुनिक मानवाधिकार से सम्बन्धित जितने भी अधिकार बताए गए हैं, किसी न किसी रूप में उन सबका सन्निवेश है। जीवमात्र का कल्याण वेदों का परमोद्देश्य है। इसके लिए सभी आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त करना सभी का अधिकार है। प्राकृतिक वस्तुओं, वायु, जल, प्रकाश, अन्न आदि सबके लिए समान हैं। पृथिवी पर सभी को समान रूप से जीने का अधिकार है। अधिकार की दृष्टि से स्त्री और पुरुष में विभेद नहीं किया गया है।

॥ इति ॥

[170] इ॒मा नारी॑रविध॒वाः सु॒पत्नी॒राञ्जने॑न स॒र्पिषा॒ सं स्पृ॑शन्ताम्। अ॒न॒श्रवो॑ऽअनमी॒वाः सु॒रत्ना॒ आ रो॑हन्तु॒ जन॑यो॒ यो॒नि॒मग्रे॑॥ *अथर्ववेद*,, 12/2/30.

[171] आ॒शस॑नं वि॒शस॑न॒मथो॑ अधिवि॒कर्त॑नम्। वही, 14.1.28.

[172] अ॒नृ॒क्ष॒रा ऋ॒जवः॑ सन्तु॒ पन्था॑नो॒ येभि॒: सखा॑यो॒ यन्ति॑ नो॒ वरे॑यम्। वही, 14/1/34.

4

चतुर्थ अध्याय

मानवाधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्र, भारतीय संविधान तथा अथर्ववेदीय मानवाधिकारों में साम्य एवं वर्त्तमान प्रासङ्गिकता

मानवाधिकार आधुनिक समाज के बहुचर्चित विषयों में से एक है। मानवाधिकार की मूल प्रकृति सार्वभौमिक है। इसलिए यह विश्व के सभी मनुष्यों के लिए एक समान ही है। आज प्रायः विश्व के सभी देश अपने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हेतु यथासामर्थ्य प्रयासरत है। इसके लिए भारत समेत विश्व के अनेक देशों द्वारा विभिन्न आयोगों की स्थापना की जा चुकी है। सभी आयोग अपने-अपने आधार पर मानवाधिकारों को परिभाषित कर तदनुरूप कार्यान्वयन में प्रवृत्त हुए हैं। इन परिभाषाओं में मानवाधिकारों के विभिन्न सतहों को उद्घाटित किया गया है। प्रायः द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के पश्चात् सभी देशों ने मिलकर यह निश्चित किया कि इस तरीके की दुर्घटनाएँ मानव समाज के लिए अत्यन्त भयावह हैं। अतः इन पर नियन्त्रण आवश्यक है। एतदर्थ 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में uno नामक एक संस्था की स्थापना की गई, जिसमें मनुष्यमात्र के अधिकारों की रक्षा का प्रावधान किया गया। उक्त प्रावधान को मानवाधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्र (Universal Declaration of Human Rights) नाम दिया गया, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के सभी

मनुष्यों के लिए कुछ अधिकार दिए गए इस प्रकार वैश्विक धरातल पर मानवाधिकारों का सार्वजनिक घोषणापत्र तैयार हुआ, जिसमें वैश्विक जगत् के सभी व्यक्तियों के लिए मानवोचित मूलभूत अधिकारों का विधान किया गया। इस घोषणापत्र पर भारत समेत विश्व के लगभग 117 देशों ने हस्ताक्षर किए तथा कुछ देशों ने इसका विरोध किया। जिन देशों ने इसका विरोध किया उनमें अधिकतर मुस्लिम देश हैं। उन्होंने उक्त घोषणापत्र को शरीयत विरोधी बताया।

सार्वभौमिक घोषणापत्र में मानवाधिकारों के प्रायः सभी पक्षों का समायोजन किया गया है। इसमें वर्णित जितने भी अधिकार हैं, वे विश्व के सभी मनुष्यों को समान रूप से प्रदान किए गए हैं, चाहे वह किसी भी देश, समाज, राष्ट्र, मत अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाला हो। उक्त घोषणापत्र में कहा गया कि सभी व्यक्तियों को वैश्विक धरातल पर सर्वत्र मनुष्य के रूप में पहचाने जाने का अधिकार है। इस प्रकार किसी भी देश में किसी भी व्यक्ति के साथ अमानवीय व्यवहार पर रोक लगाने का प्रयास किया गया।

जिस समय सार्वजनिक घोषणापत्र का निर्माण किया जा रहा था, उसी समय भारतीय संविधान भी अपने अस्तित्व में आ रहा था। इसलिए सार्वजनिक घोषणापत्र में सन्निहित मानवाधिकारों का प्रभाव भारतीय संविधान पर भी पड़ा। मानवाधिकार के सार्वजनिक घोषणापत्र में जिन मानवाधिकारों का विश्लेषण किया गया है, प्रायः उन्हीं मानवाधिकारों का संयोजन भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत किया गया है। इस प्रकार सार्वजनिक घोषणापत्र तथा भारतीय संविधान में मानवाधिकारों की दृष्टि से बहुत अधिक समीपता दिखाई पड़ती है। सार्वजनिक घोषणापत्र में जिन अधिकारों का विवेचन किया गया है, उनमें समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, काम का अधिकार, स्तरीय जीवन जीने का अधिकार, आराम एवं सुविधापूर्ण जीवन जीने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, वैज्ञानिक प्रगति में भाग एवं उससे लाभ लेने का अधिकार, जीवन, सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता का अधिकार, मनमानी ढंग से गिरफ्तारी अथवा निर्वासन के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्यायिक सुनवाई का अधिकार, शान्तिपूर्ण सभा संगोष्ठी करने तथा संघ बनाने के अधिकार सम्मिलित हैं। भारतीय संविधान में भी उपर्युक्त प्रायः सभी अधिकारों में सम्यक् समायोजन

हुआ है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से लेकर अनुच्छेद 18 तक समानता के अधिकारों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि विधि के समक्ष सभी नागरिकों को समान समझा जाएगा, सार्वजनिक स्थलों पर सबका समान अधिकार होगा, जाति, लिङ्ग, स्थान आदि के आधार पर किसी से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 19 से 22 तक स्वतन्त्रता के अधिकार का विवेचन है, जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्ण सम्मेलन की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, संगठन बनाने की स्वतन्त्रता, व्यापार की स्वतन्त्रता, जीवन का अधिकार आदि अन्तर्निहित हैं। अनुच्छेद 23 से 24 तक नागरिकों द्वारा शोषण के विरोध के अधिकार को बताया गया है, जिसमें बलात् श्रम, मानव का दुर्व्यापार, बाल मजदूरी आदि के लिए विवश करना शोषण कहा गया है। इसके अन्तर्गत मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के शोषण की गणना की गई है। भय आदि के द्वारा किसी को मानसिक रूप से प्रताड़ित करना भी शोषण के अन्तर्गत गिना जाएगा। अनुच्छेद 25 से लेकर अनुच्छेद 29 तक धार्मिक स्वतन्त्रता का वर्णन है, जिसके अनुसार राष्ट्र का कोई भी नागरिक अपनी इच्छा के अनुसार कीसी भी धर्म का चुनाव सकता है। राज्य उसके किसी धार्मिक निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेगा। अनुच्छेद 30 में शिक्षा के अधिकार का विवेचन है, जिसमें प्राथमिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य बताया गया है तथा कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को शिक्षा से वञ्चित नहीं किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संस्कृति की रक्षा का पूर्ण अधिकार होगा।

इस प्रकार मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र में वर्णित मानवाधिरों और भारतीय संविधान में प्रतिपादित मानवाधिकारों में अत्यधिक समानता है। प्राचीन भारतीय साहित्यों में मानवाधिकार के सैद्धान्तिक पक्ष की विस्तृत चर्चा की गई है। सुगम जीवन के लिए जो भी आवश्यक अधिकार हैं, वे सभी व्यक्ति को समान रूप से प्राप्त कराए गए हैं। सामान्य अधिकार ही आज के समय में मौलिक अधिकार के रूप में जाने जाते हैं। मानवाधिकार का अभिप्राय मानव के उन सभी अधिकारों से है जो कि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक एवं श्रेष्ठ जीवन यापन और विकास के लिए स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं, तथा मानव के सम्मान व गरिमा के साथ जीने के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हाते हैं। मानवाधिकारों का उद्गम प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के सन्दर्भ में ही हुआ होगा। वायु, जल, भोजन आदि सभी को जीवन धारण करने के लिए आवश्यक हैं। समाज को स्वस्थ्य बनाने में नैतिक मूल्य सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। नैतिक मूल्यों के प्रसंग में ही

मानवाधिकार के बहुशः संकेत देते हुए वेद में सदा मनुष्य बनने का उपदेश दिया गया है।[1] क्योंकि मानवता से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।[2] आज-कल मानवतावाद एक सिद्धान्त के रूप में विकसित हो गया है। मानवता एक सर्वसाधारण गुण है, जो प्रत्येक मनुष्य में होनी चाहिए, इसके अभाव में मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता है अपितु वह पशु तुल्य हो जाता है। मानवता और मानव में परस्पर धर्म-धर्मि सम्बन्ध है, एक के अभाव में दूसरे की परिकल्पना सम्भव नहीं है। अतः अपने धर्म(मानवता) के पालन में ही जीवमात्र का कल्याण निहित है। मानवता बहुत व्यापक शब्द है, जिसको स्पष्ट करत हुए कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य को ऐसे ही कार्य करने चाहिए जिसमें प्राणिमात्र का कल्याण निहित हो।[3] वेद मानव को मानव की रक्षा करने का सन्देश देते हैं।[4] यजुर्वेद कहता है कि मनुष्य को इस संसार में त्याग पूर्वक भोग करना चाहिए, किसी प्रकार का लालच नहीं करना चाहिए[5] अर्थात् अपने लिए जितना आवश्यक हो उतना लेकर शेष अन्यों के लिए छोड़ देना चाहिए।[6] इसीलिए ही वैदिक ऋषि अपरिग्रह का सिद्धान्त दिए हैं। उक्त परिकल्पना पूर्णतया मानवता से अभिप्रेत है। मानवता को स्पष्ट करते हुए वेदों को आधार बनाकर महाभारत और पुराण स्पष्टरूप से कहते हैं कि "प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना चाहिए जो उसे अपने लिए अपेक्षित न हो।"[7] यह मानवता की सर्वोत्कृष्ट परिभाषा है। यदि हम दूसरों से सम्मान चाहते हैं तो हमें भी दूसरों का सम्मान करना चाहिए। इस प्रकार एक-दूसरे के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार की आकांक्षा ही मानवाधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए। कोई मनुष्य किसी भी मनुष्य से द्वेष न करे।[8] यद्यपि अथर्ववेद में मानवाधिकार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है तथापि मानवाधिकारों के सैद्धान्तिक पक्ष पर गहन चिन्तन हुआ है। भारतीय संविधान में वर्णित अधिकतर मानवाधिकारों के सैद्धान्तिक पक्ष अथर्ववेद में दिखाई

---

[1] मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। *ऋग्वेद,* 10/52/6.

[2] न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्, न मानुषात् परो धर्मः। *महाभारत,* शान्ति० 12/288/20.

[3] प्रियं सर्वस्व पश्यत उत शूद्र उतार्ये। *अथर्ववेद,* 19 /62 /1.

[4] पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः। *ऋग्वेद,* 6/75/14.

[5] तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा। *शुक्लयजुर्वेद,* 40/1.

[6] योग दर्शन में इसको 'अपरिग्रह' कहा गया है।

[7] आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। *पद्मपुराण*, सृष्टि 19/357-358. *महाभारत*, 5/15/17.

[8] मा नो द्विक्षत कश्चन। *अथर्ववेद,* 12/9/19.

पड़ते हैं। मानवाधिकार के सार्वजनिक घोषणापत्र तथा भारतीय संविधान में वर्णित मानवाधिकारों का अथर्ववेद में वर्णित मानवाधिकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन निम्न है-

समानता का अधिकार (Right of Equility)-

मानवाधिकारों की गणना के प्रसंग में समानता का प्राथम्य माना गया है। किसी भी व्यक्ति के विकास में समानता एक मौलिक आवश्यकता है। समानता का तात्पर्य ऐसे परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है, जिसके कारण सभी व्यक्तियों को व्यक्तित्व के विकास हेतु समान अवसर प्राप्त हो सके। प्रायः मानवाधिकार सम्बन्धी विश्व के सभी आयोगों में समानता का अधिकार सन्निहित है। मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 1, 2, 7 तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से लेकर अनुच्छेद 18 तक समानता के अधिकारों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें कहा गया है कि सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समानता का अधिकार है तथा लिङ्ग, वर्ण, भाषा, धर्म, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। समानता की उक्त अवधारणा का प्रकाशन वैदिक साहित्य में अनेकशः परिलक्षित होता है। अथर्ववेद में समानता के विविध पक्षों को अत्यन्त सूक्ष्मता से उद्घाटित किया गया है। 'समान' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद में बहुत बार हुआ है।[9] सम्पूर्ण प्रजा के लिए समानता का प्रावधान करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि राजा के समक्ष सभी प्रजा समान है। न्याय प्रक्रिया में राजा सभी के साथ समानता पूर्वक व्यवहार करे, चाहे अपराधी किसी राजपरिवार से ही सम्बन्ध रखने वाला ही क्यों न हो। इसमें राजा द्वारा अपनी प्रजा के साथ समानता पूर्वक वर्ताव से राजा तथा राज्य दोनों की सदा ऊर्ध्वगति स्वीकार की गई है।[10]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(2) क में कहा गया है कि सार्वजनिक स्थानों पर सभी नागरिकों का समान अधिकार होगा। अथर्ववेद भी कहता है कि सार्वजनिक स्थानों जैसे कूप, तालाबों, स्नानागारों आदि में सबको समान रूप से जाने की अनुमति होनी चाहिए।[11] भारतीय संविधान के

---

[9] *अथर्ववेद,* 6/64/2

[10] त्वज्ञातास्त्वयि॑ चरन्ति॒ मर्त्या॒स्त्वं बि॑भर्षि द्विप॒दस्त्वं चतु॑ष्पदः । तवे॒मे पृ॑थिवि॒ पञ्च॑ मान॒वा येभ्यो॒ ज्योति॑र॒मृतं॑ मर्त्ये॑भ्य उ॒द्यन्त्सूर्यो॑ रश्मिभि॑रातनोति॥ वही, 12/1/15.

[11] स॒मानी॒ व॒ आकू॑तिः समा॒ना हृद॑यानि वः । स॒मा॒नम॑स्तु वो॒ मनो॒ यथा॑ वः॒ सुस॒हास॑ति॥ वही, 6/64/3

अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का अन्त किया गया है। उक्त सम्बन्ध में अथर्ववेद कहता है कि इस लोक में सब प्रकार के ईर्ष्या, द्वेष आदि वृत्तियों को भुलाकर सभी लोग आपस में मिलकर रहें[12] तथा परस्पर इस प्रकार से प्रेम करें, जिस प्रकार गौ अपने बछड़े से करती है।[13] अथर्ववेद में भी कहा गया है कि सभी मनुष्यों के लिए पानी भरने का स्थान समान हो, सभी के भोजन का स्थान समान हो। इस प्रकार राजाश्रित सार्वजनिक स्थानों पर सबका समान अधिकार है। समानता के अन्तर्गत अथर्ववेद में जीवमात्र के साथ समानता पूर्वक व्यवहार का प्रावधान किया गया है। कहा गया है कि सभी जीवों के साथ समानता का भाव रखने वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। जिस प्रकार आधुनिक समानता के अन्तर्गत सभी मनुष्यों को समान रूप से जीने का अधिकार दिया गया है, उसी प्रकार अथर्ववेद में भी कहा गया है कि किसी भी पक्षी को मनुष्य तो क्या गरुण आदि पक्षी भी न मारें। राजा का यह कर्त्तव्य होता है कि वह राज्य में रहने वाले द्विपाद् और चतुष्पाद् अर्थात् मनुष्यों तथा पक्षियों के साथ-साथ पशुओं की भी रक्षा करे।[14] इस प्रकार जीवन के अधिकार की दृष्टि से अथर्ववेद की विचारधारा अत्यन्त व्यापक है। समानता की आधुनिक अवधारणा में केवल मनुष्य की गणना की जाती है। इस प्रकार अथर्ववेद में प्रतिपादित समानता की अवधारणा आधुनिक समानता से अधिक व्यापक दृष्टिकोण रखता है। आधुनिक समानता के सामान्य अधिकारों का विवेचन अथर्ववेद में बहुत पहले ही किया जा चुका है। समानता के अधिकार की अवधारणा कोई नूतनी अवधारणा नहीं है।

स्वतन्त्रता का अधिकार (Right To Freedom)-

यद्यपि मानवाधिकारों में किसी प्रकार की पूर्वापर्य उचित नहीं तथापि मानव व्यक्तित्त्व के विकास में समानता के पश्चात् स्वतन्त्रता का स्थान है। मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 3, 4, 13 में तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से लेकर अनुच्छेद 22 तक स्वतन्त्रता के अधिकारों का विवेचन है जिसमें नागरिकों के लिए विभिन्न प्रकार के स्वतन्त्रताओं का समायोजन है। मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 20(1) तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद

[12] अस्मिन् लोके सं एतम्। वही, 12/3/3

[13] अ॒न्यो अ॒न्यम॒भि ह॑र्यत। *अथर्ववेद*, 3/30/1

[14] विश्वं॑जिद् द्वि॒पाच्च॒ सर्वं॑ नो॒ रक्ष॒ चतु॑ष्पा॒द्यच्च॑ नः॒ स्वम्॥ वही, 6/107/2

19(1) ग में सभी व्यक्तियों को संगठन बनाने का अधिकार दिया गया है। इस विषय में अथर्ववेद कहता है कि विभिन्न प्रकार की शक्तियों की प्राप्ति के लिए संगठन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[15] संगठन में रहना मोक्ष प्राप्ति का सरलतम मार्ग माना गया है। संगठन में रहते हुए एक-दूसरे की सहायता करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।[16] इस प्रकार संगठन का निर्माण जनसामान्य द्वारा समाज तथा आत्म कल्याण हेतु किया जाता है। इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी संगठन का निर्माण कर सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) क में नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है। उक्त अधिकार का विवेचन अथर्ववेद में भी हुआ है। अथर्ववेद कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो दूसरों के मन को आकर्षित करे।[17] सदा ऐसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए जिसमें सभी का कल्याण निहित हो अर्थात् ऐसी वाणी का प्रयोग कदापि नहीं करनी चाहिए जिससे किसी को दुःख होता हो। मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 23 तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) छ में सभी नागरिकों के व्यापार की स्वतन्त्रता का उल्लेख है, जिसके अन्तर्गत यह कहा गया है कि सभी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुरूप किसी भी व्यवसाय को चुन सकते हैं। अथर्ववेद में भी व्यापार की स्वतन्त्रता के संकेत हैं। इसमें कहा गया है कि पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी कढ़ाई, बुनाई आदि का कार्य कर सकती हैं। इस प्रकार स्त्रियों को भी व्यवसाय अपनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान है।[18] अथर्ववेद में कृषिकार्य को सर्वोत्तम व्यवसाय माना गया है यह कार्य राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी कर सकते हैं।[19] सभी के घरों में दूध, घृत आदि के सम्पन्नता की प्रार्थना है । अतः पशुपालन के लिए भी सभी अधिकृत बताए गए हैं।[20]

शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation) -

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में शोषण के विरोध के अधिकार का प्रावधान

---

[15] वही, 3/20/8.

[16] सꣳमेꣳत विश्वे वचꣳसाꣳ पतिं दिꣳवः । *अथर्ववेद*, 7/21/1

[17] प्र वꣳदासि वꣳल्गु । वही, 12/3/18

[18] द्रष्टव्य, पृष्ट संख्या, 99.

[19] सीरा युञ्जन्ति कꣳवयो युꣳगा विं तन्वते पृथꣳक् । धीराꣳ देꣳवेषुꣳ सुम्नꣳयौ॥ *अथर्ववेद,* 3/17/1

[20] सं सिꣳञ्चामि गवांꣳ क्षीꣳरं समाज्येꣳन बलꣳ रसꣳम् । वही, 2/26/4, सं सं स्रꣳवन्तु पꣳशवः समश्वाः समु पूरुꣳषाः । वही, 2/26/3

किया गया है। यदि कोई व्यक्ति मनमाने तरीके से किसी अन्य व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी भी प्रकार के कार्य के लिए विवश करता है तो उसको शोषण कहा जाएगा। इस प्रकार किसी के मौलिक अधिकारों का हनन शोषण कहलाएगा। अथर्ववेद में भी सभी प्रकार के शोषण का निषेध किया गया है। यद्यपि अथर्ववेद में जो दास बनाने का समर्थन किया गया है तथापि कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उसके इच्छा के विरुद्ध दास नहीं बनाना चाहिए अपितु उसी को दास बनाना चाहिए जो दास बनने का इच्छुक हो।[21] अथर्ववेद में दास्य वृत्ति आजीविका के साधनों में से एक बताया गया है। इसका चुनाव भी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ही करता था। अथर्ववेद में दास शब्द सेवक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अगर कहीं बलात् दास बनाने की बात कही गई है तो वह केवल शत्रुओं को। राजा शत्रु पक्ष के किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध दास बना सकता था। सामान्य नागरिकों के विषय में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति किसी को दास न बनाए।[22] यदि कोई किसी अन्य को दास बनाने की कोशिश करता है तो राजा द्वारा उसके सर्वनाश का प्रावधान किया गया है।[23] इस प्रकार अथर्ववेद में शोषण को जघन्य अपराध माना गया है। आधुनिक समज में भी शोषण की उक्त अवधारणा का ही व्यवहार में प्रयोग होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा दास-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया गया। किसी को बलपूर्वक अथवा भय से दास बनाना शोषण कहलाएगा। यह एक दण्डनीय अपराध माना गया। समाज में आज भी लोग स्वेच्छापूर्वक सेवा आदि के द्वारा दास्य वृत्ति अपनाकर अपनी आजिविका का निर्वहन कर रहे हैं। यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक दास्य वृत्ति को अपनाता है तो वह शोषण की कोटि में नहीं आएगा। इस प्रकार शोषण सम्बन्धी नियमों में अथर्ववेद तथा भारतीय संविधान में बहुत अधिक समनता है।

---

[21] उत्तमो अस्योषधीनां तवा वृक्षा उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति॥ *अथर्ववेद,* 6/15/1

[22] योऽस्मान्चक्षुषा मनसा चित्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्। त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा॥ वही, 5/6/10

[23] वही, 4/40/1-8

धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion) -

मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 18 और 19 में तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से लेकर 28 तक धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लेख किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक किसी भी धर्म को अपनाने में स्वतन्त्र है। किसी धर्मविशेष को अपनाने के लिए किसी भी व्यक्ति को सरकार अथवा किसी अन्य स्वायत्त संस्थाओं आदि के द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता है। धर्म की आधुनिक अवधारणा की दृष्टि से यदि हम बात करते हैं तो अथर्ववेद में दो विचारधाराओं का वर्णन उपलब्ध होता है। प्रथम विचारधारा में ऐसे व्यक्तियों की गणना की गई है जो परम सत्ता में विश्वास रखते थे तथा कर्मठ एवं विवेकशीलतापूर्वक यज्ञादि अनुष्ठानों में भाग लेते थे। इसको आस्तिक कहा गया है। द्वितीय विचारधारा ठीक इसके विपरीत थी। इसमें उनकी गणना की जाती थी जो वेद को नहीं मानते थे। इनका यज्ञादि में किसी प्रकार का विश्वास नहीं होता था। ये लोग आलसी, अकर्मण्य तथा समाजविरोधी बताए गए हैं। अथर्ववेद में इनके विनाश की बात कही गई है। यदि आधुनिक दृष्टि से देखा जाए तो अथर्ववेद धार्मिक स्वतन्त्रता का पोषण नहीं करता। यद्यपि आधुनिक समाज में सभी धार्मिक रूप से स्वतन्त्र हैं तथापि समाजविरोधी कार्यों की अनुमति किसी को नहीं है। अथर्ववेद में जिनको नास्तिक कहा गया है वस्तुतः वे समाजविरोधी कार्यों में संलिप्त होते थे। हिंसा, चोरी, पिशुन आदि के द्वारा सामान्य जनों को पीड़ित करते थे। आज भी ऐसे कार्य समाज में अपराध की श्रेणी में गिने जाते हैं।

धार्मिक अधिकार के विषय में अथर्ववेद समानता को अपनाता है। इसमें यज्ञादि विभिन्न धार्मिक कार्यों को करने का सभी लोगों को अधिकार दिया गया है।[24] यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में विभिन्न प्रकार के समाजोपकरी कार्यों का समावेश किया गया है, जिनका उद्देश्य अत्मोत्थान के साथ-साथ समाज का उत्कर्ष था। चूँकि अथर्ववैदिक समय में धर्म का तात्पर्य कर्त्तव्य से होता था। इसलिए धार्मिक स्वतन्त्रता का कोई सवाल ही नहीं उठता। फिर भी यदि धर्म को आधुनिक अवधारणा की दृष्टि से देखा जाए तो कोई भी व्यक्ति स्वेच्छानुरूप किसी भी इष्टदेव की उपासना कर सकता है। इस प्रकार अथर्ववेद में आधुनिक धार्मिक स्वतन्त्रता भी परिलक्षित होती है।

---

[24] न ये शे॒कुर्य॒ज्ञिया॑ नाव॑मा॒रुह॑म्० । *अथर्ववेद,* 20/94/6

शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Rights about Education) -

मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 26 तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का विवेचन है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने के अधिकार का प्रावधान है। आधुनिक समाज में सभी व्यक्ति स्वेच्छानुरूप शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिए समान रूप से शिक्षा की व्यवस्था की गई है। अथर्ववेद में भी स्त्री और पुरुषों के शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न संकेत उपलब्ध होते हैं। सभी दिशाओं में प्रजा के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करना राजा का प्रधान कर्त्तव्य बताया गया है।[25] इस प्रकार तत्कालीन समय में भी शिक्षा राजाश्रित थी। विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग मिलता है। कन्याओं के द्वारा भी ब्रह्मचर्य पालन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कन्याएँ भी शिक्षा ग्रहण करती थीं। स्त्रियों को प्रायः गृहकार्य की शिक्षा दी जाती थी। यत्र-तत्र स्त्रियों द्वारा वेदादि सत्य शास्त्रों के पठन-पाठन के संकेत भी मिलते हैं।[26] एक स्थान पर कहा गया है कि घर पहुँचकर स्त्री और पुरुष दोनों स्वाध्याय करें।[27] इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार वेदादि सत्य शास्त्रों को सभी लोग पढ़ने के अधिकारी हैं। राजा पृथिवी से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे पृथिवी। मेरे राज्य में कोई भी अशिक्षित न रहे। हमारी सारी प्रजाएँ सम्यक् प्रकार से ज्ञान- विज्ञान से सम्पन्न हों अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने में पूर्ण रुचि वाली हों।[28] इस प्रकार अथर्ववेद में स्त्री और पुरुष की शिक्षा के विभिन्न संकेत मिलते हैं।

भारतीय संविधान में सभी नगरिकों को प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य की गई है। अथर्ववेद में पूरी शिक्षा निःशुल्क बताई गई है। विद्यार्थी गुरुकुल में आचार्य के समीप रहकर अपनी शिक्षा पूरी करता था। शिक्षा की परिसमाप्ति पर गुरुदक्षिणा का विधान था। प्रत्येक शिष्य यथासामर्थ्य गुरु को दक्षिणास्वरूप कुछ न कुछ देता था। आधुनिक समय में किस व्यक्ति को कौन-सी शिक्षा लेनी है, यह उसकी अथवा उसके माता-पिता की इच्छा पर निर्भर करता है परन्तु अथर्ववेद में किस शिष्य को क्या शिक्षा देनी है, इसका निर्धारण प्रायः आचार्य करता था। जब बालक शिक्षा हेतु गुरुकुल में

---

[25] आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि। अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसु वागपि गच्छतु॥ वही, 2/12/8.

[26] *अथर्ववेद*, 7/49/2.

[27] वही, 14/1/23.

[28] ताः नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवी धेहि मह्यम्। वही, 12/1/16.

प्रवेश हेतु आता था, तब आचार्य तीन दिन तक उसके गतिविधियों का निरीक्षण करके उसकी शिक्षा का निर्धारण करता था। इस प्रकार शिक्षा की दृष्टि से आधुनिक शिक्षा व्यवस्था तथा अथर्ववेद में प्रतिपादित शिक्षा के अधिकारों में कुछ समानता दिखाई पड़ती है तो कुछ वैषम्य भी स्पष्ट हैं।

विवाह सम्बन्धी अधिकार (Rights about Marry) -

मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 16 में विवाह के अधिकार का उल्लेख है जिसमें यह कहा गया है कि प्रत्येक स्त्री और पुरुष के पारस्परिक इच्छा से ही विवाह किया जाना चाहिए। अथर्ववेद में वैवाहिक सम्बन्धों के विषय में प्रत्येक युवक और युवती को स्वतन्त्र बताया गया है। कहा गया है कि प्रत्येक युवक और युवती पारस्परिक सहमति से ही विवाह सम्बन्ध स्थापित करें।[29] युवावस्था में परस्पर एक-दूसरे के चाहने वालों का विवाह होना चाहिए।[30] इस प्रकार अथर्ववेद प्रेम-विवाह की अनुमति देता है। इस प्रकार सार्वजनिक घोषणा पत्र तथा भारतीय संविधान द्वारा वैवाहिक स्वातन्त्र्य का अथर्ववेद में स्पष्ट उल्लेख है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र तथा भारतीय संविधान में वर्णित मानवाधिकारों में मौलिक समानता है। सार्वजनिक घोषणापत्र में निहित प्रायः सभी अधिकारों का भारतीय संविधान में समायोजन है। उक्त दोनों विधानों में निहित मानवाधिकारों का सन्निवेश अथर्ववेद में भी हुआ है। अथर्ववेद भारतीय संस्कृति का एक प्राचीन ग्रन्थ है, इसलिए मानवाधिकार का विवेचन अथर्ववेद में भी हुआ है यह कोई नूतनी परिकल्पना नहीं है।

अथर्ववेदीय मानवाधिकारों की वर्तमान प्रासङ्गिकता (Contemporary Relevance of Atharvavediy Human Rihgts)-

आज प्रायः विश्व के सभी देशों में मानवाधिकार को लेकर सजगता दिखाई देती है। नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हेतु अधिकतर देशों में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की जा चुकी है।

---

[29] शुष्यं॑तु मयि ते॒ हृद॑य॒मथो॑ शुष्यत्वा॒स्यम्। अथो॒ नि शु॑ष्य॒ मां काम॒नाथो॒ शुष्का॑स्या चर॥ *अथर्ववेद,* 1/139/2.

[30] एयम॑गन्पति॑का॒मा॒ जनि॑कामो॒ऽहमाग॑मम्। अश्वः॒ कनि॑क्रद॒द्यथा॒ भगे॑ना॒हं स॒हाग॑मम्॥ वही, 2/31/5.

मानवता की रक्षा हेतु वैश्विक धरातल पर भी मानवाधिकार आयोग गठित किया जा चुका है, जिससे कि किसी भी देश में किसी भी देश के मनुष्य के प्रति किसी प्रकार का अमानवीय व्यवहार न हो सके। भारत, ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों ने अपने संविधान में भी मानवाधिकार को समुचित स्थान दिया है। भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में मानवाधिकारों का विस्तृत विवेचन हुआ है। सभी के अधिकारों की ठीक प्रकार से सुरक्षा सुनिश्चित किया जा सके इसके लिए सन् 1993 में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई। इतना ही नहीं नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु प्रत्येक राज्य का अपना मानवाधिकार आयोग गठित है। इतना कुछ प्रयास होने के बावजूद भी आज आशातीत सफलता नहीं मिल रही है। छूआछूत, भेदभाव जैसी अवांछित सामाजिक समस्याएँ आज भी दिखाई देती हैं। समाज का अधिकतर मनुष्य अपने सामाजिक जीवन से असन्तुष्ट है। समाज में पारस्परिक विद्वेष, कलह, वैमनस्य जैसी समस्याओं के कारण सामाजिक नैतिकता का ह्रास हुआ है। इनको मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास की सबसे बड़ी बाधा के रूप में देख रहा है। व्यक्ति से द्वेष, माता पिता एवं गुरुओं के प्रति अनादर, आचारहीनता तथा नैतिक पतन आदि की समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। दूसरों की अवमानना एक प्रकार का प्रचलन बन गया है, स्वतन्त्रता के नाम पर लोग स्वच्छन्दता के जीवन के प्रति प्रवृत्त हो रहे हैं। भौतिक सुखों की प्रतिस्पर्धा में मानव, मानवीय मूल्यों की लेशमात्र भी परवाह नहीं करता, मनुष्य अपने आंशिक सुख के लिए भी किसी अन्य व्यक्ति अथवा जीव को अपार कष्ट देने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करता। स्वार्थी लोलुप जनों द्वारा वृद्धावस्था में माता-पिता को वृद्धाश्रम, अनाथालय आदि में छोड़ने जैसी नूतन समस्याएँ उद्भूत हो रही हैं। आज के मनुष्य की आवश्यकताएँ निस्सीम हैं। वह आवश्यकता से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है। सबको यह पता है कि उक्त सभी कार्य प्राणिमात्र के लिए संकट उत्पन्न करने वाले हैं, फिर भी कोई उनसे विरत नहीं होने का प्रयास कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के जीव नष्ट हो रहे हैं और प्रकृति-चक्र संकट में आ गया है। पर्यावरण प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग जैसी भयानक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। आज तक इनका कोई स्थाई समाधान नहीं ढूँढा जा सका है। समाज में जिस गति से मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है तथा मानव समाज में जितनी विसंगतियाँ दिखाई पड़ रही हैं, उनसे सारा विश्व चिन्तित है। यदि मानवीय मूल्यों का इसी प्रकार से हनन होता रहा तो चारो तरफ अराजकता उत्पन्न हो जाएगी, जिसके परिणामस्वरूप मानवीय सभ्यता संकट में आ जाएगी। यदि समय रहते इन सभी पर

नियन्त्रण नहीं पाया गया तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य फिर से बर्बर हो जाएगा और समाज में सर्वत्र अशान्ति और अराजकता उत्पन्न हो जाएगी। फिर हम उसी अवस्था में पहुँच जायेंगे जहाँ से हमने अपनी सभ्यता के विकास की यात्रा प्रारम्भ की थी।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या मानवीय सभ्यता जर्जर हो चुकी है? या फिर अपने विनाश के कगार पर है? क्या विनाश के पश्चात् ही नया सवेरा सम्भव है? जहाँ तक बात सभ्यता की है वहाँ हम सभ्यता के विकास के यौवनत्व का दम्भ भरते हैं। कहते हैं कि आज विज्ञान अपने चरम पर है, इस आधार पर हम पूर्ण रूप से विकसित होने का दावा करते हैं। यह सत्य है कि हमें वैज्ञानिक रूप से उन्नत होना चाहिए परन्तु क्या वैज्ञानिक उन्नति ही सभ्यता की उन्नति का मापदण्ड है? वैज्ञानिक उन्नति सभ्यता के विकास का एक अङ्ग मात्र है। वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ सभ्यता के विकास की और भी बहुत सारी आवश्यक शर्तें होती हैं, जिनमें अधिकार और कर्त्तव्यों की सुरक्षा, नैतिकता, पारस्परिक सौहार्द्र, रहन-सहन आदि प्रमुख हैं। इनकी समष्टि के आधार पर ही किसी सभ्यता के उन्नत होने का दावा किया जा सकता है। अब हमें यह सोचना होगा कि क्या हम इस दिशा में उन्नत हैं ? यदि हम इस दिशा में उन्नत हैं तो सभ्यता की उन्नति पर गर्व करना ठीक है और यदि उन्नत नहीं हैं तो हमें इस दिशा में पूर्ण मनोयोग से प्रयास करना होगा। मानवीय सभ्यता की रक्षा हेतु हमें नैतिक रूप से उन्नत बनना होगा, सभी के अधिकारों की सुरक्षा के सार्थक प्रयास करने होंगे। कोई भी मानवीय सभ्यता उन्नत तभी मानी जा सकती है जब समाज में समरसता हो, पारस्परिक सौहार्द्र हो, सभी को विकास के समान अवसर प्राप्त हों, किसी के साथ भी किसी प्रकार का भेदभाव न किया जाए, चारो तरफ भयमुक्त वातावरण हो आदि आदि। आधुनिक समाज को वैदिक समाज से अधिक उन्नत नहीं माना जा सकता क्योंकि आधुनिक समाज में अपेक्षाकृत अधिक जटिल समस्याएँ परिव्याप्त हैं। प्रारम्भ में मनुष्य किसी प्रकार के मूल्य से अवगत नहीं था, इसलिए बर्बरता पूर्वक व्यवहार करता था परन्तु आज का मनुष्य विभिन्न मूल्यों को जानते हुए भी तदनुरूप आचरण नहीं करता। जानकर भी न मानने वाली अवस्था अत्यन्त दुष्कर होती है।

स्वतंत्र भारत के संविधान लागू होने के आधी सदी से अधिक बीत जाने के बाद लोगों में मानवाधिकारों के प्रति सजगता तो दिखाई देती है परन्तु अपने कार्यक्षेत्र में अपने विरूद्ध किए जा रहे

उत्पीड़न को चुपचाप सहते रहते हैं। भारतीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायाधीश डॉ. ए. एस. आनन्द ने 25 अगस्त 2005 को मंगोलिया में कहा था कि संविधान और अन्य कानूनों में विस्तृत प्रावधानों के बावजूद, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण वास्तविकता है कि सामाजिक अन्याय और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शोषण और अन्य कमजोर वर्गों पर अत्याचार जारी है।[31] समाज का सर्वहारा वर्ग जो अपने कर्त्तव्यों में इतना सन्नद्ध रहा कि अधिकारों के तरफ जिसका ध्यान ही नहीं गया और जिसका गया भी उसका दमन कर दिया गया। वह समाज आज संगठित होकर अपने अधिकारों के प्रति सजग हुआ है। आज वह समझने लगा है कि सबको समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार है। उच्च वर्ग की भाँति वह भी अपना जीवन अपने तरीके से जी सकता है। सदियों से जो उसके अधिकारों का हनन हुआ है आज वह उसका जवाब माँग रहा है। अपने अतीत के प्रति उसमें असन्तोष है। आज समाज का प्रत्येक नागरिक शिक्षित और जागरूक हो रहा है। अपने प्रति हो रहे अत्याचारों के प्रति तथा अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने लगा है। आज आवश्यकता है कि जनसामान्य भी उनकी बातों को समझे और समत्व की भावना में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करे ताकि सबका साथ सबका विकास का मन्त्र सार्थक हो सके।

मानवाधिकारों की सुरक्षा हेतु उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना, विकास का केन्द्रीय लक्ष्य हो गया है। इसके लिए सभी राज्यों में मानवाधिकार आयोग का प्रावधान किया गया है परन्तु आज तक केवल 14 राज्यों में राज्य मानवाधिकार आयोग की स्थापना हो सकी है। जिस राज्य में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की जा चुकी है वहाँ भी मानवाधिकार हनन की समस्याएँ कम नहीं हुई हैं। इस प्रकार आवश्यकता है इन आयोगों के ठीक प्रकार से कार्यान्वयन की, त्वरित और पारदर्शी न्याय की। समाज के प्रत्येक वर्ग को कानून के न्याय व्यवस्था पर भरोसा दिलाने की। इस दिशा और अधिक प्रयास की आवश्यकता है। सभी राज्यों में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की जानी चाहिए तथा उनके कार्यान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। आधुनिक आयोगों के पास पर्याप्त अधिकारों की कमी है, शायद इसलिए आयोग ठीक प्रकार से अपने कार्य को अन्जाम नहीं दे पा रहे हैं। अतः आयोगों को न्यायादि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के अधिकार दिए जाने चाहिए तथा न्याय प्रक्रिया की पारदर्शिता

[31] http://nhrc.nic.in/speeches.htm#June 2006 at Geneva

पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। आयोग के निर्णय की अवहेलना करने वाले को कठोर दण्ड का विधान किया जाना चाहिए। ताकि समाज के दुष्प्रवृत्ति के लोग भय आदि से आक्रान्त रहें और किसी के अधिकार का हनन न कर सकें। यदि समाज को उत्कृष्ट और सुसभ्य बनाना है तो सभी के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिए।

राज्य के नागरिकों के नैतिक विकास के प्रति भी सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिए। जनमानस के नैतिकता के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के उपक्रम किए जाने चाहिए। इस दिशा में प्राचीन भारतीय सभ्यता की विभिन्न अवधारणाएँ कारगर साबित हो सकती हैं। विश्व में न्याय और शांति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों की मानवीय गरिमा का आदर किया जाएगा। आज मानवाधिकार की अवधारणा को भारतीय दृष्टिकोण के व्यापक फलक पर रखकर देखने की आवश्यकता है, जिसमें एकांगी नहीं वरन् भौतिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक भावना सन्निहित हो। आज आवश्यकता है व्यक्ति को समग्रता के आलोक में देखने की। अथर्ववेद का सामाजिक जीवन कर्त्तव्य प्रधान है। अधिकारों का विवेचन भी प्रायः कर्त्तव्यों में ही अनुस्यूत है। वैदिक मान्यता में प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर कर्त्तव्यों का विभाजन किया गया है। कर्त्तव्यों का ही अपर नाम धर्म है जिसका पालन प्रत्येक मनुष्य ले लिए अपरिहार्य है। कर्त्तव्य के पालन से ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है। वेदों में समाज से जुड़े प्रायः सभी व्यक्तियों जैसे राजा, प्रजा, माता, पिता, पुत्र, पुत्री, पति, पत्नी आदि के कर्त्तव्यों का समुचित निर्धारण किया गया है। अथर्ववेद समाज के दोनों आधारभूत स्तम्भों अधिकार और कर्त्तव्यों पर व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। कर्त्तव्य प्रधान तत्कालीन समाज में अधिकार की संकल्पना गौण थी। लोग कर्त्तव्यों को ही अपना धर्म समझते थे। इन्हीं कर्त्तव्यों के अनुपालन में ही एक-दूसरे के अधिकार सन्निहित थे। किसी के अधिकारों की अनधिकृत चेष्टा सर्वथा पाप माना जाता था। पाप और पुण्य की प्राक्कल्पना ही मनुष्यों के अनैतिक व्यवहार पर नियन्त्रण रखती थी। शास्त्रोक्त कर्त्तव्य और अधिकार का अनुप्रयोग पुण्य माना जाता था और शास्त्र विरुद्ध पाप की श्रेणी में गिना जाता था। समाज के दृष्टि से अथर्ववेद का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। मानव जाति के हित में जो कुछ आवश्यक दशाएँ हैं का संरक्षण मानवाधिकार कहा गया है। किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में प्रकृति का विशेष योगदान होता है इसलिए अथर्ववेद मानव के अधिकारों के साथ-साथ प्रकृति के संरक्षण को भी मानवाधिकार कहा गया है। वृक्ष, लता समेत

प्राणी मात्र को समाज का अङ्ग माना गया है। जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी आदि को भी देवता मानकर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया गया है। अथर्ववेद न केवल मनुष्य के अपितु प्राणिमात्र के अधिकारों की रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य बताता है। तात्पर्य यह है कि किसी भी जीव की हत्या करना या उनके आवास, भोजन आदि को नष्ट करना अनैतिक और पाप है। यद्यपि तत्कालीन समाज में इन कार्यों के लिए किसी प्रकार के राजकीय दण्ड व्यवस्था की प्रावधान नहीं किया गया है तथापि पाप-पुण्य की परिकल्पना से व्यक्ति आत्मनियन्त्रित था और इन प्रकार की गतिविधियों से अपने-आप को विरत रखने का सतत प्रयास करता था। आधुनिक समाज तथा प्राचीन समाज में यही अन्तर आया है कि प्राचीन समाज में व्यक्ति आत्मनियन्त्रित होता था परन्तु आधुनिक समाज दण्ड़ादि द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। वास्तव में सभी के अधिकारों की रक्षा के लिए आत्मनियन्त्रण सबसे अच्छा मार्ग है। यदि सभी व्यक्ति आत्म नियन्त्रित होंगे तो अनैतिक कार्यों में कदापि प्रवृत्त नहीं होंगे जिससे सभी के अधिकारों कि रक्षा सुनिश्चित होगी। यदि मनुष्य अपने अधिकार और कर्त्तव्यों का समन्वय करके नैतिकतापुर्वक समाज में प्रवृत्त होगा तो विभिन्न सामाजिक समस्याओं का समाधान सम्भव है इस प्रकार अथर्ववेदमें वर्णित मानवाधिकारों का अधिकारक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मानव समाज का उत्कर्ष तभी सम्भव है जब सभी के अधिकारों की रक्षा की जाएगी। मानवाधिकार संरक्षण सम्बन्धी विभिन्न आयोगों की स्थापना के बावजूद भी सामाजिक समस्याएँ आज भी कम नहीं हैं। आयोग को और अधिक सक्रियता से कार्य करने की आवश्यकता है।

अथर्ववेद की विभिन्न शिक्षाओं से यह प्रतीत होता है कि इसमें नैतिक पक्ष पर अधिक प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक रूप से उन्नत बनाने की प्रेरणा दी गई है। किसी के अधिकारों पर अनधिकृत चेष्टा सर्वथा पाप समझा गया है। अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों को अधिक महत्त्व दिया गया है। समाज में प्रायः सभी सम्बन्धों के पारस्परिक कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है। प्रत्येक के कर्त्तव्यों में दूसरों के अधिकारों का समायोजन किया गया है। आधुनिक समाज में शिक्षा आदि के प्रसार से व्यक्तियों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है परन्तु साथ ही साथ कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। समाज को उसके कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करने के विविध उपाय किए जाने चाहिए। आज का व्यक्ति अपने आंशिक लाभ हेतु किसी को भीषण कष्ट पहुँचाने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करता। ऐसे में सभी को कर्त्तव्यों के साथ-साथ अपने अधिकारों के प्रति भी सजग

रहने की आवश्यकता है। ताकि मनमाने तरीके से कोई व्यक्ति किसी के अधिकार पर अनधिकृत चेष्टा में सफल न हो सके। समाज में आधिकारों और कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से समायोजन किया जाना चाहिए। आज आवश्यकता है समाज के प्रत्येक नागरिक को उसके संवैधानिक अधिकार और कर्त्तव्यों को ठीक प्रकार से अवगत कराने की ताकि वह अपने प्रति हो रहे अत्याचार को समझकर समुचित प्रकार से उसका विरोध कर सके तथा न्याय की पारदर्शिता में विश्वास कर सके। किसी प्रकार के शोषण अथवा अवाञ्छित यातना का शिकार न हो सके।

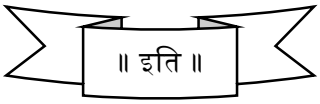

निष्कर्ष

सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान-परम्परा केवल वेदों का विलासमात्र है। इसमें मानव जीवन के आदर्श और यथार्थ का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। आत्मोन्नति में बाधा उत्पन्न करने वाले सहज उद्भाव्य अमानुषिक प्रवृत्तियों के समुल्लेखपूर्वक तन्निदान के समुचित मार्गों का उपनिबन्धन है । अथर्ववेद लौकिक जीवन के अत्यन्त समीप है, इसलिए इसमें मानव से सम्बन्धित प्रायः सभी पक्षों पर विस्तृत चर्चा की गई है। समाज मानव-जीवन का एक अभिन्न अङ्ग है, अतः सुव्यवस्थित समाज की उत्कृष्ट परिकल्पना भी इसमें प्राप्त होती है। विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के लिए पारस्परिक अधिकारों और कर्त्तव्यों का समुचित विधान प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दृष्टिगत है। अधिकार और कर्त्तव्य समाज के दो आधार स्तम्भ माने जा सकते हैं, इनके अभाव में समाज की परिकल्पना असम्भव-सी प्रतीत होती है। मानवाधिकार आधुनिक समय के बहुचर्चित विषयों में से एक है, प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके सैद्धान्तिक पक्ष की विस्तृत चर्चा उपलब्ध होती है। मानव के व्यक्तित्त्व के विकास तथा सुगम जीवन के लिए आवश्यक सभी अधिकार मानवमात्र को समान रूप से प्राप्त कराए गए हैं। अधिकार प्रायः दो प्रकार के होते हैं 1. विशेषाधिकार और 2. सामान्याधिकार। विशेषाधिकार परिस्थितिजन्य होते हैं और व्यक्तिविशेष को दिए जाते हैं। इनका निर्धारण प्रायः पदों, सम्बन्धों आदि के आधार पर किया जाता हैं । सामान्य अधिकार वे अधिकार होते हैं जो सभी मनुष्यों को केवल मनुष्य होने के कारण समान रूप से प्राप्त होते हैं । ये देश, परिस्थिति आदि से समावृत्त नहीं होते। सामान्य अधिकार ही आधुनिक समय में मौलिक अधिकार के रूप में जाने जाते हैं। ये ही मौलिक अधिकार मानवाधिकार की कोटि में आते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार का अभिप्राय मानव के उन सभी अधिकारों से है, जो कि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, भौतिक, सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं तथा मानव को सम्मान के

साथ जीने के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हाते हैं। वायु, जल, भोजन आदि सभी को जीवन धारण करने के लिए आवश्यक हैं। इसलिए इन पर सबका समान अधिकार है। व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास के साथ-साथ समाज को स्वस्थ बनाने में नैतिक मूल्य सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। नैतिक मूल्यों के प्रसंग में ही वेदों में मानवाधिकार के बहुशः स्पष्ट संकेत मिलते हैं। मानवता मनुष्य का अनिवार्य धर्म है, प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में मानवता का सन्निवेश करना चाहिए। भारतीय मनीषा में मानवता को सबसे बड़ा धर्म बताया गया है। यह एक सामान्य धर्म है, जो प्रत्येक मनुष्य में होनी चाहिए, इसके अभाव में मनुष्य, मनुष्य नहीं अपितु पशुतुल्य हो जाता है। मानवता को स्पष्ट करते हुए महाभारत और पुराण में कहा गया है कि "प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो उसे अपने लिए अपेक्षित न हो।" इस प्रकार हम वही व्यवहार दूसरों के साथ करें जो दूसरों से हम अपने लिए अपेक्षा करते हैं। यदि हम दूसरों से मान-सम्मान की अभिलाषा करते हैं, तो हमें भी दूसरों के सम्मान का ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार एक-दूसरे के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार की आकांक्षा ही मानवाधिकार है। जीवन, समानता, स्वतन्त्रता आदि मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकार हैं, बिना कारण किसी भी व्यक्ति को प्राकृतिक अधिकारों से वञ्चित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए। कोई मनुष्य किसी भी मनुष्य से द्वेष न करे। वेद मानव को मानव की रक्षा करने का सन्देश देते हैं। यजुर्वेद कहता है कि मनुष्य को इस संसार में त्याग पूर्वक भोग करना चाहिए, किसी प्रकार का लालच नहीं करना चाहिए अर्थात् अपने लिए जितना आवश्यक हो उतना लेकर शेष अन्यों के लिए छोड़ देना चाहिए। उक्त परिकल्पना मनुष्य समेत अन्यजीवों के अधिकारों की रक्षा हेतु प्रेरित करती है।

वेद प्रायः सार्वभौमिक तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं। इसकी शिक्षाएँ भी देशातीत और कालातीत होती हैं। मानवाधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक है, प्रायः सभी देश, काल और वातावरण में इसके मौलिक स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता। यद्यपि 'मानवाधिकार' शब्द एक नवीन परिकल्पना है तथापि सैद्धान्तिक दृष्टि से वेदों में इसका व्यापक दृष्टिकोण उपलब्ध होता है। आधुनिक मानवाधिकारों के अन्तर्गत मानवातिरिक्त जीवों को बहुत बाद में सम्मिलित किया गया है परन्तु अथर्ववेद में सभी जीवों के जीवन आदि के अधिकारों की रक्षा के विभिन्न संकेत मिलते हैं। -

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥

अर्थात् सभी जीवों को समान रूप से पृथिवी पर जीने का अधिकार है। अतः सभी प्रकार की हिंसा निन्दनीय बताई गई है। जिस प्रकार समाज में दुष्ट व्यक्तियों के नाश का विधान किया जाता है उसी प्रकार अथर्ववेद में मनुष्य को हानि पहुँचाने वाले जीवों के विनाश की बात कही गई है । यद्यपि अथर्ववेद समाज को चार वर्णों में विभाजित करता है तथापि किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया गया है। सभी के साथ-साथ निवास, भोजन, पानी, उपासना आदि के स्पष्ट संकेत हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि- **प्रियं सर्वस्व पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।** अर्थात् सभी के साथ समानता पूर्वक व्यवहार करो, चाहे वह आर्य हो अथवा शूद्र । समान मन वाले होकर सभी मनुष्यों को मित्रवत् इस पृथिवी पर विचरण करना चहिए- **संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ।** संगठन में रहकर ही सभी का विकास सम्भव है, इसलिए सभी को संगठन में एक साथ रहने की बात कही गई है। **माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः** समस्त पृथिवी को ही माता की संज्ञा दी गई है। **त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ** आदि उक्तियों के माध्यम से सभी मनुष्यों को परमात्मा की सन्तान के रूप में देखा गया है। कहा गया है कि **मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा** अर्थात् एक माता के सभी पुत्र परस्पर किसी प्रकार का द्वेष न करने तथा **संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै** कहकर जीवमात्र के साथ भी मित्रतापूर्वक व्यवहार करने का विधान किया गया है। सभी के लिए अविद्वेषी होकर परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करने का विधान किया गया है। इस प्रकार आधुनिक समानता का अथर्ववेद में विधान किया गया है। आजीविका आदि की दृष्टि से सभी मनुष्य स्वतन्त्र बताए गए हैं। अथर्ववेद में प्रत्येक प्रकार के शोषण का विरोध किया गया है, कहा गया है कि-

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमि रन्धय पूर्वकृत्वरि ।

अर्थात् यदि को किसी व्यक्ति को बलात् दास बनाए तो राजा उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करे। राजा के माध्यम से समाज में विभिन्न प्रकार की समरसता को स्थापित करने की बात कही गई है। आधुनिक लोकतन्त्र की भाँति जनता को राजा चुनने का अधिकार बताया गया है। विभिन्न प्रतिनिधियों

के माध्यम से प्रजा राजा का चुनाव करती थी। सबको राजा के समक्ष अपनी बात रखने का अधिकार बताया गया है।

मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणापत्र में जिन अधिकारों का समन्वय हुआ है, प्रायः वे सभी अधिकार अथर्ववेद में परिलक्षित होते हैं। यद्यपि घोषणापत्रोक्त सभी अधिकार अथर्ववेदोक्त मानवाधिकारों से पूर्णतः साम्य नहीं रखते तथापि उनके मौलिक स्वरूप का निदर्शन अथर्ववेद में मिलता है। इसलिए यह कहना कि मानवाधिकार की परिकल्पना सर्वथा एक नवीन परिकल्पना है, उचित नहीं प्रतीत होती है। यद्यपि मानवाधिकार को लेकर समस्त विश्व अपने-अपने तरीके से कार्यरत है तथापि इस दिशा में आशातीत सफलता नहीं मिल रही है। अतः इस दिशा में और अधिक प्रयास की आवश्यकता है। व्यक्ति में नैतिकता के साथ-साथ आत्म-नियन्त्रण की भावना के विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। सभी के अधिकारों की रक्षा हेतु, निम्न कदम उठाए जा सकते हैं –

1. व्यक्ति को नैतिक रूप से उन्नत बनाया जाए ताकि वो किसी के अधिकारों की अनधिकृत चेष्टा न करे।

2. सरकार द्वारा सभी के मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए ताकि वह अनैतिक आचार के प्रति बाध्य न हो सके।

3. न्यायव्यवस्था और दण्ड विधान इतना कठोर हो कि व्यक्ति अपराध न करे।

4. यदि समाज का चहुँमुखी विकास वाञ्छित है तो आरक्षण व्यवस्था का कठोरता से पालन तब तक आवश्यक है जब तक सामाजिक समरसता स्थापित न हो जाए, ताकि सदियों से वञ्चित वर्ग को समाज के सम्मुख लाया जा सके। आज समाज में असमानता की कमी अवश्य हुई है तथापि निर्धारित लक्ष्य से अभी हम बहुत दूर हैं। समाज के हर उस व्यक्ति तक आरक्षण व्यवस्था का लाभ पहुँचना चाहिए जो उसका अधिकारी है। इसके लिए और अधिक सार्थक प्रयास की आवश्यकता है।

॥इति॥

अथर्ववेदस्थ मानवाधिकारों की सम्भावित ससन्दर्भ-सूची

परिशिष्ट- 1 : समानता का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.7.4	अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्। ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमस्मीत्येत्य ॥
1.7.6	आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे। दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥
1.7.7	त्वमग्ने यातुधानान् उपबद्धामिहा वह। अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥
1.10.2	नमस्ते रजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम्। सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥
1.10.3	यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु। राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥
5.11.10	समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन् नावेषा समा जा। ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥
5.14.6	यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने। तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥
5.29.14	एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः। तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥
6.42.1	अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः। यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥
6.64.1	सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे सम्जानाना उपासते ॥
6.64.2	समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्। समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥
6.64.3	समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति ॥
6.74.3	यथादित्या वसुभिः सम्बभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः। एवा त्रिणामन्न् अहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥
6.89.2	शोचयामसि ते हार्दि शोचयामसि ते मनः। वातं धूम इव सध्र्यङ्ङामेवान्वेतु ये मनः ॥
6.89.3	मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती। मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥
7.36.1	अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्। अन्तः कृष्णुष्व मां हृदि मन इन् नौ सहासति ॥
7.37.1	अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा। याथाऽसो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥
7.38.1	इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम्। परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥
7.38.2	येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि। तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥
7.38.3	प्रतीची सोममसि प्रतीची उत सूर्यम्। प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाछावदामसि ॥
7.38.4	अहं वदामि नेत्त्वं सभायामह त्वं वद। ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥
8.8.21	सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः। मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्।
9.2.4	नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः। तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥
9.3.20	कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः। तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते ॥
9.5.27	या पूर्वं पतिं वित्त्वाऽथान्यं विन्दतेऽपरम्। पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥
9.5.28	समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥
9.5.29	अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्। वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥

9.5.30 आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तान् उप ह्वये ॥

10.1.3 शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृछतु ॥

12.1.29 विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥

12.1.44 निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥

12.1.45 जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥

12.3.17 स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन् निरृतिर्मो अरातिः ॥

13.3.19 अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।

14.2.72 जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥

18.3.49 उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥

19.62.1 प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥

20.128.10 यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद्देवाः प्रागकल्पयन् ॥

परिशिष्ट- 2 : शिक्षा का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.7.1	स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥
1.7.4	अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमस्मीत्येत्य ॥
5.8.5	यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये । इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥
5.11.3	सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः । न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥
5.12.1	समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥
5.17.5	ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् । तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥
5.17.6	देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः । भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥
5.17.7	ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते । वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥
5.17.8	उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः । ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा ॥
5.17.12	नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥
5.17.13	न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥
5.17.14	नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥
5.17.15	नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥
5.18.7	शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदम् । अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥
5.18.11	गौरैव तान् हन्यमाना वैतहव्यामवातिरत्। ये केसरप्राबन्धायाश्वरमाजामपेचिरन् ॥
5.19.8	तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् । ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुछुना ॥
6.62.3	वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः । इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥
6.63.4	संसमिद्युवसे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥
6.73.3	इहैव स्त माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु । वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिः वो अस्तु ॥
6.74.1	सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता । सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्॥
6.74.2	सम्ज्ञपनं वो मनसोऽथो सम्ज्ञपनं हृदः । अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥
7.54.1	ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते । एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यछतः ॥
7.68.1	सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥
7.68.2	इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत्। इमानि त उदिता शम्तमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥
7.68.3	शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ॥
7.83.2	दाम्नोदाम्नो राजन् इतो वरुण मुञ्च नः । यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥
8.1.4	उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीषमवमुञ्चमानः । मा छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥
8.9.10	को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः । क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः॥
9.1.11	यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥
9.1.23	मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति । मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥

9.4.17 शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥

9.10.27 गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

11.2.31 नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥

11.5.1 ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥

11.5.2 ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः
षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति

11.5.3 आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥

12.3.56 दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये
तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि
णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥

12.3.57 प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥

12.4.2 प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥

12.4.3 कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥

12.4.7 यदस्याः कस्मै चिद्भोगाय बालान् कश्चित्प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥

12.4.8 यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥

12.4.9 यदस्याः पल्पूलनं शकृद्दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥

12.4.10 जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद्ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥

12.4.11 य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥

12.4.1 य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥

12.4.13 यो अस्य स्याद्वशाभोगो अन्यामिछेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥

12.4.14 यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदछायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥

12.4.15 स्वमेतदछायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनान् अन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥

12.4.16 चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान् नारद ब्राह्मणास्तर्ह्योष्याः ॥

12.4.17 य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥

12.4.18 यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनान् उत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥

12.4.19 दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥

12.4.20 देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥

12.4.21 हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन् निप्रियायते ॥

12.4.22 यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन् एवं ह विदुषो वशा ॥

12.4.23 य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥

12.4.24 देवा वशामयाचन् यस्मिन्न् अग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान् नारदः सह देवैरुदाजत ॥

12.4.25 अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥

12.4.26 अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥

12.4.27 यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद्गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥

12.4.28 यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥

12.4.29 वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥

12.4.30 आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥

12.4.31 मनसा सं कल्पयति तद्देवामपि गछति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥

12.4.32 स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गछति ॥

12.4.33 वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥

12.4.34 यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत्॥

12.4.35 पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥

12.4.36 सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥

12.4.37 प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥

12.4.38 यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥

12.4.39 महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥

12.4.40 प्रियं पशूनां भवति यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात् ॥

12.4.41 या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥

12.4.42 तां देवा अमीमांसन्त वशेया3 अवशेति ।
तामब्रवीन् नारद एषा वशानां वशतमेति ॥

12.4.43 कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृछामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥

12.4.44 विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥

12.4.45 नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥

12.4.46 विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥

12.4.47 त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यछेद्ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥

12.4.48 एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥

12.4.49 देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिरृग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत् ॥

12.4.50 उतैनां भेदो नाददाद्वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात्तं देवा आगसोऽवृश्चन्न् अहमुत्तरे ॥

12.4.51 ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥

12.4.52 ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।

13.1.3 आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।

13.1.25 यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद्देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥

13.2.29 बण्महामसि सूर्य बडादित्य महामसि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महामसि ॥

13.2.34 चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥

13.2.46 अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषसम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमछ ॥

15.7.5 ऐनं श्रद्धा गछत्यैनं यज्ञो गछत्यैनं लोको गछत्यैनमन्नं
गछत्यैनमन्नाद्यं गछति य एवं वेद॥

15.10.1 तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागछेत् ॥

18.2.36 शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वणेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥

18.2.37 ददाम्यस्मा अवसानमेतद्य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥

18.3.71 आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं देहि सुकृतामु लोके ॥

18.4.56 इदं हिरण्यं बिभृहि यत्ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥

19.11.4 आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
सृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥

19.43.8 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥

20.27.2 शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥

20.70.20 वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥

20.79.1 इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

20.128.16 ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥

20.133.10 विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥

20.135.20 कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥

स्त्री-शिक्षा

7.13.1 यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे ।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥

7.49.1 देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यछन्तु॥

7.49.2 उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुनानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥

11.1.22 अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङ्ङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥

11.1.24 अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन्।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥

11.1.27 शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा
ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे॥

14.1.23 पूर्वापरं चरतो मायैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूंरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥

14.1.39 आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥

14.2.20 यदा गार्हपत्यमसपर्यैत्पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥

14.2.75 प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गछ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥

परिशिष्ट- 3 : राजनैतिक अधिकार

सन्दर्भ **मन्त्र**

1.16.1 येऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत्॥

1.20.1 अदारसृद्भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद्वृजिना द्वेष्या या ॥

1.20.2 यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि ॥

5.8.4 अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा
मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥

5.8.5 यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥

5.12.6 आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥

5.14.4 पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्॥

5.14.5 कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥

5.19.14 तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥

6.75.1 निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत्॥

7.10.1 यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥

7.14.3 सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥

7.50.1 यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति ।
एवाहमद्य कितवान् अक्षैर्बध्यासमप्रति ॥

7.50.2 तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् ।
समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥

7.50.3 ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥

7.50.4 वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदव भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज॥

7.50.5 अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।
अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥

7.53.2 सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥

7.60.5 उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु ॥

7.60.6 सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन ॥

7.60.7 इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥

7.70.3 अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥

7.70.4 अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥

8.3.9 तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥

8.3.10 नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥

8.4.3 इन्द्रासोमा दुष्कृतो वज्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥

8.4.4 इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं1 पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥

8.4.5 इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥

8.4.18 वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन् ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥

8.4.19 प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥

8.8.1 इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥

10.4.6 पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात्पथो येन स्मा वयमेममसि ॥

10.4.7 इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥

10.4.8 संयतं न वि ष्परद्व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥

10.4.9 अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥

11.1.28 इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥

11.1.29 अग्नौ तुषान् आ वप जातवेदसि परः कम्बूकामप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निरृतेर्भागधेयम् ॥

13.1.12 सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन् नाथितो नेत्त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥

13.1.28 समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाट्विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥

13.1.29 हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥

13.1.30 अवाचीनान् अव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकान् अग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥

16.7.13 स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ॥

19.49.9 यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत्॥

19.49.10 प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत्।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥

20.136.40 यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥

20.136.70 महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥

20.136.80 महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥

20.136.90 महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥

20.136.10 महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥

20.136.16 यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत्॥

परिशिष्ट- 4 : जीवन का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.6.1	शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥
1.6.4	शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः । शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः । शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥
1.18.1	निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निरराति सुवामसि । अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥
5.4.6	इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥
5.4.7	देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः । स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥
5.4.10	शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो रपः । कुष्ठस्तत्सर्वं निष्करद्दैवं समह वृष्ण्यम् ॥
5.6.5	न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः॥
5.6.6	अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः॥
5.8.9	अत्रैनान् इन्द्र वृत्रहन्न् उग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनान् अभि तिष्ठेन्द्र मेद्यहं तव । अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥
5.9.8	उदायुरुद्बलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन् मनीषामुदिन्द्रियम् आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा। आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥
5.12.2	तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व। मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥
5.15.3	तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.4	चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.5	पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.6	षट्च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.7	सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.8	अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.9	नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.10	दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे । ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.30.6	इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥
5.30.8	मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा । निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥
6.41.3	मा नो हासिषुरृषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः । अमर्त्या मर्त्यामभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः॥
7.32.1	उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥
7.35.2	इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत । तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥
7.35.3	परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून् मोत सूतुः । अस्वं त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥
7.44.1	उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥
7.50.5	अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् । अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥

7.50.6 उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित्तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥

7.73.7 उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन् नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥

8.1.2 उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥

8.1.21 व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत्।
अप त्वन् मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥

8.3.15 यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

8.4.11 परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्॥

8.4.15 अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पुरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥

13.1.19 वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधातु॥

13.1.32 उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नान् अव मे जहि ।
अवैनान् अश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥

18.2.6 त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥

18.4.62 आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम्॥

18.4.63 परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः॥

8.4.24 इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥

18.4.70 प्रास्मत्पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः॥

19.7.5 आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥

19.8.3 स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥

19.9.1 शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥

19.9.2 शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥

19.9.3 इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता ।

19.9.6 शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥

19.9.7 शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वां छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥

19.9.8 शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥

19.9.9 नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं
नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का
देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥

19.9.10 शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥

19.9.11 शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥

19.9.14 पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः
शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।

19.24.5 जरां सु गछ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥

19.24.6 परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन्॥

19.26.1 अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥

19.27.8 आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥

19.32.3 दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥

19.67.1 पश्येम शरदः शतम् ॥

19.67.2 जीवेम शरदः शतम् ॥

19.67.3 बुध्येम शरदः शतम् ॥

19.67.4 रोहेम शरदः शतम् ॥

19.67.5 पूषेम शरदः शतम् ॥

19.67.6 भवेम शरदः शतम् ॥

19.67.7 भूषेम शरदः शतम् ॥

19.67.8 भूयसीः शरदः शतम् ॥

19.69.1 जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

19.69.2 उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

19.69.3 संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

19.69.4 जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

19.70.1 इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥

20.26.6 केतुं कृण्वन्न् अकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥

12.2.23 इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

परिशिष्ट- 5 : आर्थिक अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.7.3	वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥
1.8.1	इदं हविर्यातुधानान् नादी फेनमिवा वहत् । य इदं स्त्री पुमान् अकरिह स स्तुवतां जनः ॥
5.14.7	यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता । तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥
6.78.2	अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥
7.29.1	अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम । दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥
12.2.23	इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥
15.9.2	तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥
19.13.7	अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥
19.31.5	पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् । पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्॥
19.31.10	आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥
19.64.2	इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥
20.27.2	शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥

परिशिष्ट- 6 : धार्मिक अधिकार

सन्दर्भ **मन्त्र**

5.12.11 नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥

7.26.1 विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

7.97.1 यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन् अवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठैप्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥

7.97.2 समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥

7.97.3 यान् आवह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥

11.1.1 अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥

11.7.7 राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमष्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥

13.1.53 वर्षमाजं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतान् अग्निर्गीर्भिरूर्ध्वामकल्पयत् ॥

13.2.2 दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥

19.1.1 संसं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥

19.1.2 इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत यज्ञमिमं वर्धयता
गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥

19.1.3 रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥

19.55.1 रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥

19.55.4 प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

19.55.5 अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥

19.58.6 ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥

परिशिष्ट- 7 : अभिव्यक्ति का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
5.15.1	एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.2	द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.3	तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.15.4	चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥
5.18.1	नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे। मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥
5.18.2	अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः। स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥
5.18.3	आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा। सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥
5.18.4	निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्। यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥
5.18.5	य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्। सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्धे उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥
7.20.2	अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥
7.20.4	यत्ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु। तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥
7.20.5	एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्। भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥
8.4.14	यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवामप्यूहे अग्ने। किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निरृथं सचन्ताम् ॥
16.2.1	निर्दुरमण्य ऊर्जा मधुमती वाक्॥
16.2.2	मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥
16.2.3	उपहूतो मे गोपाः उपहूतो गोपीथः ॥
16.2.4	सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥
16.2.5	सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥
16.2.6	ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥
19.63.1	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥
20.4.2	आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु। गृभाय जिह्वया मधु ॥

परिशिष्ट- 8 : विवाह का अधिकार

सन्दर्भ **मन्त्र**

1.14.1 भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक्पितृष्वास्ताम्॥

1.14.2 एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः॥

6.139.10 न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन् निताना॥
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते॥

6.139.20 शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर॥

6.139.30 संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि॥

6.139.40 यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर॥

6.139.50 यथा नकुलो विछिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कामस्य विछिन्नं सं धेहि वीर्यावति॥

7.38.5 यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरःइ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत्॥

14.1.9 सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादादात्॥

14.1.12 शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम्॥

14.1.16 द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः॥

14.1.17 अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः॥

14.1.18 प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥

14.1.20 भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गछ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥

14.1.21 इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥

14.1.26 नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते॥

परिशिष्ट- 9 : कार्य का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.13.3	प्रवतो नपान् नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः। विद्म ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥
7.6.2	महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे । तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥
12.1.31	यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्। स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥
13.1.1	उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत्। यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु॥
13.1.2	उद्राज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः। सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥
13.1.14	रोहितो यज्ञं व्यदधाद्विश्वकर्मणे तस्मात्तेजांस्युप मेमान्यागुः। वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥
13.1.18	वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः। इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥
13.1.49	ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥
19.68.1	अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया । ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥

परिशिष्ट- 10 : अभय प्राप्ति का अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
1.8.3	यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥
1.8.4	यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः । तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥
5.3.2	अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः । अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत्॥
5.3.10	ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् । आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो नो उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥
13.1.20	परि त्वा धात्सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा । सर्वा अरातीरवक्रामन् एहीदं राष्ट्रमकरः सुनृतावत्॥
19.15.1	यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवं छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥
19.15.5	अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥
19.15.6	अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥
19.16.1	असपत्नं पुरस्तात्पश्चान् नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान् मा शचीपतिः ॥

परिशिष्ट- 11 : स्त्री अधिकार

सन्दर्भ	मन्त्र
6.7.1	येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेना नोऽवसा गहि ॥
7.46.1	सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥
7.46.2	या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥
7.46.3	या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी । विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥
8.4.17	प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं1 गूहमाना । वव्रमनन्तमव सा पदीष्टिअ ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥
8.6.8	यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् । छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्न् अनीनशत्॥
10.1.10	यद्दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम । अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥
11.1.13	परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठो अध्यरुक्षद्भराय । तासां गृह्णीताद्यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात्॥
11.1.14	एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व। सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय॥
11.1.15	ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः। अयं यज्ञो गातुविन् नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु॥
12.2.31	इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् । अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥
14.1.5	आछद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः । ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥
14.1.7	रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सुर्याया भद्रमिद्वासो गाथयति परिष्कृता ॥
14.1.26	नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते । एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥
14.1.28	आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् । सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥
14.1.30	स इत्तत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् । प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥
14.1.35	यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् । यद्गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥
14.1.39	आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः । अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥
14.1.43	यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवा त्वं सम्राज्ञेधि पत्युरस्तं परेत्य ॥
14.1.44	सम्राज्ञेधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञेधि सम्राज्युत श्वश्र्वाः ॥
14.2.70	सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्। सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥

सन्दर्भग्रन्थ सूची

➢ **प्राथमिक स्त्रोत** –

क) **साक्षात्स्त्रोत** –

- *अथर्ववेदः(शौनकीयः)*. भाष्यकार सायणाचार्यः. (सं.) विश्वबन्धुः. विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर : वि. सं. 2018.
- *अथर्ववेद का सुबोधभाष्य*. दामोदर सातवलेकर. स्वाध्याय मण्डल, पारडी : 1985.
- *अथर्ववेदसंहिता (हिन्दी अनुवादः)*. हरिशरण सिद्धान्तालंकार. भगवती प्रकाशन. माडल टाउन, नई दिल्ली : 1994.
- ……. *(हिन्दी व्याख्या)*. पं. जयदेव शर्मा. आर्ष साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर : वि. सं. 2014.
- ……. *(संस्कृत-हिन्दी व्याख्या)*. क्षेमकरणदास त्रिवेदी. अथर्ववेद भाष्य कार्यालय, इलाहाबाद : 1911-1921.
- …….. *(आंग्लानुवादः)*. डब्ल्यु. डी. व्हिट्ने. मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली : 1962.
- *अथर्ववेद : एक परिचय*. रजनीश. विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली : 2011.
- *अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन*. कपिलदेव द्विवेदी. विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर(भदोही) : 2012.
- *अथर्ववेद पर सायणभाष्य की समीक्षा*. जितेन्द्र कुमार. जे. पी. पब्लिशिंग हाउस. शक्तिनगर, दिल्ली : 2002.
- *कमेन्ट्री आन मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम*. डी. राय. हिन्दी पब्लिसिंग हाउस, इलाहाबाद : 1999.
- *भारत में महिला मानवाधिकार*. विप्लव. राहुल पब्लिसिंग हाउस शास्त्री नगर, मेरठ : 2012.

- *भारत में मानवाधिकार*. अरुण चतुर्वेदी, संजय लोढा. पंचशील प्रकाशन, जयपुर : 2010.
- *मानव अधिकार*. शिवदत्त शर्मा, विधि साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली : 2006.
- *मानव अधिकार*. सुधारानी श्रीवास्तव, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल : 2009.
- *मानवाधिकार के सवाल भारतीय समाज*. (सं.) कौशल पंवार, सानिध्य बुक्स गांधीनगर, दिल्ली : 2016.
- *मानवाधिकार विधियाँ*. श्रवण कुमार सैनी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर : 2013.
- *मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम*. बसन्ती लाल बाबेल. सुबिधा ला हाउस, भोपाल: 1996.
- *राजनीतिक सिद्धान्त*. पुखराज जैन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा :2009
- *समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन*, आर.सी. वरमानी, गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली : 2005
- *समाज दर्शन का सर्वेक्षण,* शिव भानु सिंह, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद : 2001
- *Atharva vedh.* Tulsiram. arsh sahitya prachar trast, delhi : 2011.

ख) **असाक्षात्स्त्रोत** –

- *आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम्*. आ. आपस्तम्बः. (सं) उमेश चन्द्र, पाण्डेयः. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी : 1969, द्वितीयं संस्करणम्।
- *आश्वलायन गृह्यसूत्रम्*. गणेश शास्त्री, गोखले. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना : 1937.
- *ईशादि नौ उपनिषद्*. गीताप्रेस, गोरखपुर : वि.सं. 2066.
- *ऋग्वेदसंहिता*, सायणभाष्य. वैदिक संशोधन मण्डल, पूना : 1972.
- *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,* दयानन्द, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा : 1967.
- *गौतमधर्मसूत्राणि*. आ. गौतमः. (सं) उमेश चन्द्र, पाण्डेयः. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी : 1066, द्वितीयं संस्करणम्।
- *निरुक्तम्, दुर्गावृत्ति*. आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना : 1918.
- *बौधायनधर्मसूत्रम्*. आ. बौधायन:. (सं) आचार्य नरेन्द्र कुमार. विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली : 1999. प्रथम संस्करण।
- *भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग : गठन, कार्य और परिदृश्य*. अरुण राय. राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली: 2002.

- *मनुस्मृतिः*. मनुः. (सं) राजवीर शास्त्री. (अनु.) सुरेन्द्र कुमार. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली : जून 2000. पंचम संस्करण.
- *महिलाएं एवं मानवाधिकार*. पूजा शर्मा. सागर पब्लिसर्स, जयपुर : 2012.
- *मानवाधिकार का भारतीय परिवेश*. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'. परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीतविहार दिल्ली : 2010.
- *मानवीय मूल्य, कर्त्तव्य एवं अधिकार*. एन के जैन. राजस्थान राज मानवाधिकार आयोग SSO BULDING, जयपुर.
- *मानवाधिकार के मूल आधार*. प्रेम शंकर खरे. ग्राफिक आफसेट टैगोर टाउन, इलाहाबाद : 2001.
- *मानवाधिकार और कर्त्तव्य*. प्रकाश नारायण नाटाणी. अविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्यूटर्स, जयपुर : 2003.
- *मानवाधिकार एवं महिलाएँ*. प्रकाश नारायण नाटाणी. सबलाइन पब्लिकेशन्स, जयपुर.
- *मानव अधिकार अंतरराष्ट्रीय प्रपत्रों का संकलन*. भारत: संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग. 2006.
- *यजुर्वेद संहिता*. (सं.) महर्षि देवराज. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी : 1970.
- *याज्ञवल्क्यस्मृतिः*. आ. याज्ञवल्क्यः. (सं) आचार्य 'काव्यतीर्थ' नारायणराम. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली : 2002, द्वितीय संस्करणम्.
- *सामवेद संहिता*. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर. स्वाध्याय मण्डल, पारडी : 1939.
- *त्रयी परिचय*. सत्यव्रत सामश्रमी. ओमप्रकाश (हिन्दी अनुवादक). हिन्दी समिति उत्तरप्रदेश शासन, 1975.

➢ **द्वितीयक स्त्रोत** –

- अल्तेकर, अनन्त सदाशिव. *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति*. मनोहर प्रकाशन, वाराणसी : 1980. प्रथम संस्करण.
- अवस्थी, शशि. *प्राचीन भारतीय समाज*. बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना : 1981.
- उपाध्याय, बलदेव. *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति*. शारदा मन्दिर, वाराणसी : 1967.
- काणे, पी. वी.. *धर्मशास्त्र का इतिहास*. भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्युट, पूना : 1941.
- कुमार, नरेन्द्र. (सं.), *धर्मसूत्रीय आचार संहिता*. विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली : 1999. प्रथम संस्करण.
- कुमार, शशिप्रभा. *वैदिक संस्कृति के विविध आयाम*. विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली : 2005.
- ……., ……., *वैदिक अनुशीलन*. विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली : 1989.

- कृष्णचन्द्र. *भारतीय संस्कृति*. सुरभारती प्रकाशन, दिल्ली : 1992.
- कोसंबी, दामोदर धर्मानन्द. *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता*. अनु. गुणाकर मूले. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2007.
- गैरोला, वाचस्पति. *वैदिक साहित्य और संस्कृति*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्टान, जवाहरलाल बंगला रोड, दिल्ली.
- झा, लक्ष्मीश्वर. *वेदों का मौलिक स्वरूप*. अभिषेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली.
- द्विवेदी, कपिलदेव. *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी : 2010.
- मीमांसकः, युधिष्ठिर. *वैदिक सिद्धान्त मीमांसा*. श्रीमती सावित्रीदेवी बागाडीया ट्रस्ट, कलकत्ता : 1992.
- राजवीर, *वैदिककोषः(विमर्श टीकया सहितः*), श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय न्यास, गौतमनगर, नई दिल्ली : 2009
- राय, कुमार. *वैदिक इण्डैक्स (भाग- I, II)*. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी : 1962.
- राय, विमला देवी. *वेदकालीन समाज और संस्कृति*. कला प्रकाशन, वाराणसी : 2001.
- शर्मा, कुन्दनलाल. *वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास*. विश्वेश्वरानन्दवैदिकशोध संस्थानम्, होशियारपुर.
- शर्मा, रघुनन्दन. *वैदिक सम्पत्ति*. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली : 2003.
- शास्त्री, मंगलदेव. *भारतीय संस्कृति का विकास*. भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी : 1966. प्रथम संस्करण.
- सत्यश्रवा, भगवद्दत्त. *वैदिक वाङ्मय का इतिहास*. प्रणव प्रकाशन, दिल्ली : 1976.
- Bose, A.C. *The Call of the Vedas*. Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai : 1999.
- Bloomfield. M. *Hymns of the Atharvaveda*. S. B. E. 42. : 1967.
- Griffith, RTH. *The Hymns of the Atharvaveda* (Voll.-2). D.K. Publishers, Delhi : 1995.
- Maxmuller, F. *A History of Ancient Sanskrit Literature*. Varanasi : 1968.
- Mitra, Priti. *Indian Culture and Society in the Vedas*. Calculta: 1985.
- Mukharjee, Radhakumud. *Ancient Indian Education (Brahmanical and Buddhist)*. Motilal Banarasidass Publications, Delhi : 2011.

- Plantilla, Jeffereson R. ed. *Human Right in Asian Culture Continuity and Chalange*. Hu Rights Osaka.
- Roy, Jay Tilak Guha. *Human Right For the Twenty First Century*. Indraprastha New Delhi: Indian Institute of publication AD.
- Sastry, T.V. Kapali. *Collected Works*, Dipti Publications, Delhi : 1905.
- *The Religion And Philosophy of the Atharvaveda*. Poona : 1952.

क) **कोशग्रन्थ :**

- *अमर कोश*. अमरसिंह. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : 1961.
- *वाचस्पत्यम् (छः भाग)*. चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला. ग्रं.सं. 14, वाराणसी : 1969.
- *वैदिक पदानुक्रम कोश*. (सं.) विश्वबन्धुः. विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर : 2012.
- *शब्दकल्पद्रुमः(पाँच भाग)*. चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या ९३, वाराणसी : 1967.
- *संस्कृत हिन्दी कोश*. वामन शिवराम आप्टे. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली : 1989.
- *English-Sanskrit Dictionary*. Monier – Williams. Munshiram Manoharlal, Delhi : 1976.
- *Vedic Bibliography (Volls-I-VI)*. R.N. Dandekar. Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona: 1961.

ख) **पत्र-पत्रिकाएं :**

- *Bharatiya Vidya,* Bharatiya Vidya Bhavan , Bombay.
- *Humanities,* Nagapur University, Journal.
- *Institute of Sanskrit And Indological Studies*, Punjab University, Hoshiarpur.
- *मानव अधिकार संचयिका*. (सं.) आलोक कुमार श्रीवास्तव. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, फरीदकोट हाउस, कोपरनिकस मार्ग नई दिल्ली.
- *मानवाधिकार : नई दिशाएं*(वार्षिक). (संम्पा.) जयदीप सिंह कोचर. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली.

ग) **अन्तर्जालीय स्त्रोत :**

i. www.wikipedia.com

ii. www.britannica.com
iii. www.hindunet.com
iv. http://www.sacred-texts.com/hin/
v. http://onlineresearchjournalsssm.in/?page_id=1902
vi. http://www.maanavta.com/vedas/
vii. http://www.dw.com/hi/मानवाधिकार/
viii. http://aksharsah.blogspot.com/